अध्याय–4

मृदा एवं जल प्रबन्धन

मृदा एवं जल के बिना फसलोत्पादन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मृदा की गुणवत्ता एवं जल की उपलब्धि को श्रेणी के फसलोत्पादन की आधारशीला है। अतएव इनका वैज्ञानिक एवं तार्किक प्रबन्धन कृषि के अपरिहार्य पहलु हैं।

4.1 फसलों के लिए जल की आवश्यकता

जल ही पौधों का जीवन है। पौधों के जीवन में जल की निम्नलिखित भूमिका है :

(क) पौधें के शरीर का लगभग 70% भाग जल है।

(ख) प्रारम्भ में जल की आवश्यकता बीज को फुला कर बीज के बाहरी आवरण को कमजोर करना है, ताकि नव विकसित पौधा बीज के उस आवरण को भेद कर बाहर निकल आये।

(ग) जल मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों को घुलाता है। इसके बिना पोषक तत्व, पौधों के शरीर में प्रवेश कर ही नहीं सकते। ज्ञातव्य हो कि पोषक तत्व केवल अपने आयनिक (Ionic) रूप में ही पौधों को उपलब्ध हो सकते हैं, जो जल की अनुपस्थिति में सम्भव ही नहीं है।

(घ) शरीर के अन्तरगत विभिन्न आवश्यक अवयवों जैसे प्रकाश संश्लेषण के द्वारा कार्बन डाय ऑक्साइड का स्थिरीकरण अथवा एमिनों एसिड संयोजन होता है, जिससे पौधों के शरीर का निर्माण होता है।

(ड़) पौधों के वृद्धि के लिये आवश्यक कार्बन, नेत्रजन, हाइड्रोजन, आक्सीजन की उपलब्धि का श्रोत जल एवं वायू ही है, जिनसे पौधों का शरीर निर्मित होता है।

(च) पौधा मिट्टी से जितना जल ग्रहण करता है, उसका 99% वाष्पोउत्सर्जन (Transpiration) के द्वारा पत्तियों के रन्ध्रों से निकल कर वायूमंडल में प्रवेश कर जाता है। केवल जल का 1% भाग पौधों के शरीर में रह कर सारी जटिल संश्लेषण एवं विघटन प्रक्रियाओं की पूर्ति में सहायक सिद्ध होता है।

(छ) जल के अभाव में पौधे सूख कर अन्ततः मृत हो जाते हैं।

4.1.1 फसलोत्पादन के लिए जल की उपलब्धता

पृथ्वी पर उपलब्ध सारे जल का केवल 2.6% मीठा और शेष समुद्री खारा जल है। इस मीठे जल का भी 77.23% ध्रुवों पर कर्फ के रूप में जमा है। शेष 0.6% भाग नदियों, तालाबो में संग्रहित, भूमि में नमी के रूप में उपस्थित तथा भूगर्भीय (Underground Water) के रूप में संग्रहित होता है।

4.1.2 मिट्टी में उपलब्ध नमी की गणना

मिट्टी में उपलब्ध नमी की गणना जल एवं मिट्टी की मात्रा एवं आयतन के आधर पर अलग–अलग किया जा सकता है।

$$\text{मिट्टी में जल की उपलब्ध मात्रा } (\%) = \frac{\text{उपलब्ध जल की वजन (ग्राम)}}{\text{सूखी मिट्टी का वजन}} \times 100$$

$$\text{मिट्टी में उपलब्ध जल का आयतन } (\%) = \frac{\text{उपलब्ध जल का वजन}}{\text{सूखी मिट्टी का वजन}} \times 100 \times \text{प्रपुन्ज घनत्व (BD)}$$

इस प्रकार यह भी व्यक्त किया जा सकता है कि

$$Pv = Pd \times Bd \text{ (प्रपुन्ज घनत्व)}$$

BD = Bulk Density (प्रपुन्ज घनत्व)

मिट्टी की गहराई के हिसाब से उपलब्ध मिट्टी जल की गणना :–

$$\text{जल की मात्रा (गइराई में)} = \frac{\text{Pd} \times \text{Bd} \times \text{Depth of Soil (D)}}{100}$$

जहाँ = Pd = जल की मात्रा वजन के आधर पर

BD = Bulk Density (प्रपुन्ज घनत्व)

पुनः

$$\text{जल की मात्रा} = \frac{Pv \times D}{100}$$

Pv = जल की मात्रा आयतन के आधार पर

4.1.3 मिट्टी की जल धारण क्षमता

मिट्टी में हमेशा दो प्रकार के रन्ध्र (Pores) बनते हैं– दीर्घ रन्ध्र (Macro Pore) तथा सूक्ष्म रन्ध्र (Micro pores) वर्षा या सिंचाई के बाद दोनों प्रकार के रन्ध्र जल से पूरी तरह भर जाते हैं। अतिरिक्त जल या तो धरातल से बहकर (Surface drainage) नालों या अन्य खेतों में चला जाता है अथवा मिट्टी के रिसान के परिणाम स्वरूप गहराई में जाकर भूगर्भ जल अथवा मिट्टी की ही नीचली परतों का हिस्सा बन जाता है जो पौधों की जड़ों की पहुँच से दूर होता है। जब मिट्टी के सभी सूक्ष्म एवं दीर्घ रन्ध्र जल से भरे होते हैं तथा अतिरिक्त जल या तो बहकर अन्यत्र चला जाता है, अथवा रिस कर पौधों की पहुँच से बाहर चला जाता है, तो उसे संतृप्त मृदा (Saturated Soil) या अधिकतम जल धरण क्षमता (Maximum Water holding Capacity) कहते हैं। जब उपरि अनावश्यक (Superfluous Water) बह जाता है और गुरुवाकर्षण बल के कारण आन्तरिक स्राव (Infiltration) के द्वारा भूगर्भीय जल (Gravitational Water) मिट्टी की नीचली तहों में उतर जाता है, तो उसे मृदा का फिल्ड कैपेसिटी (Field Capacity) कहते हैं। जब गुरुत्वाकर्षण जल नीचे चला जाता है तो दीर्घ रन्ध्रों का जल उसी के साथ निकल जाता है, और उनका स्थान बायू ग्रहण कर लेता है। अर्थात Field Capacity की अवस्था में सारे सूक्ष्म रन्ध्र जल से और दीर्घ रन्ध्र हवा से भरे होते हैं। संतृप्त भूमि की तुलना में फिल्ड कैपेसिटी पर मिट्टी में जल की मात्रा लगभग आधी होती है। अतएव यह भी कहा जा सकता है कि गुरुत्वाकर्षण बल के विरूद्ध मिट्टी के कणों द्वारा धारित जल फिल्ड कैपेसिटी (Field Capacity) कहलाता है।

4.1.4 फसलों की जल की आवश्यकता की गणना

विभिन्न फसलों के लिये जल की आवश्यकता की गणना करने के पूर्व कुछ सिंचाई से जुड़े शब्दों (Terms) को समझना अनिवार्य होगा।

1. वष्पोत्सर्जन (Transpiration) – पौधों की पत्तियों में रन्ध्र (Stomata) होते हैं। पौधा मिट्टी से जितना जल ग्रहण करना है, उसका लगभग 99% पर्ण रन्ध्रों से बाहर निकाल देता है तात्पर्य यह है कि यदि हमें इस बात की जानकारी हो कि इकाई क्षेत्र में लगी फसल के पौधे कितना वाष्पोत्सर्जन करेंगे, तो जल की वही मात्रा पौधें की जल की आवश्यकता समझी जा सकती है।
2. इवेपोट्रान्सपिरेशन (Evapotranspiration) – किसी खेत में लगे पौधे जब अपने पर्णरन्ध्रों (Stomata) से वाष्प उत्सर्जन कर रहे होते हैं, तभी मिट्टी एवं पौधों के विभिन्न अंगों की सतह से कुछ वाष्पीकरण (Evaporation) भी होता रहता है। अतएव यह वाष्पोत्सर्जन एवं पर्णरन्ध्रों से वाष्पोत्सर्जन का योग ही वस्तुतः पौधों की कुछ जल की आवश्यकता हुई। यह वाष्पोत्सर्जन (Evapotranspiration) ही वस्तुतः Consumptive use of water के रूप में जाना जाता है। इस प्रकार

   Consumptive use of Water (CU) = Evaporation + Transpiration + Water needed for metabolism

   कन्जम्पटिव यूज ऑफ वाटर = वाष्पोत्सर्जन + वाष्पोउत्सर्जन + चयापचय (Metabolism) के लिये जल

   इसी आधर पर फसलों की जल की आवश्यकता भी निर्धारित की गई है।

Water Requirement (WR) = CU + Application losses + water needed for special purposes

4.1.5 सिंचाई जल की आवश्यकता

सिंचाई जल के सिंचाई श्रोत से खेत तक पहुँचने में अनेकों प्रकार की जल–श्राति जैसे नालियों की रूकावट, नालियों का टूटा होना, बहते पानी से वाष्पीकरण (Evaporation) इत्यादि Application losses हो सकते है। कभी–कभी कदवा करने या बोआई के पूर्व सिंचाई इत्यादि की अतिरिक्त आवश्यकता भी होती है। उसी प्रकार

Irrigation Requirement (IR) = Water Requirement –(Effective Rainfall (ER) + Ground Water contribution (GWC)

4.1.5.1 मिट्टी की नमी की माप कैसे करें

नमूने की मिट्टी की कोई मात्रा तौल लें। मान लिया यह w_1 हुआ। इस मिट्टी को 105° से॰ तापक्रम पर तब तक गर्म करें जब तक लगातार एक ही वजन तीन बार न मिल जाय। यह वजन w_2 अंकित कर लें। अतः $w_1 - w_2$ मिट्टी में उपस्थित जल की वजन हुआ। अब

मिट्टी में नमी % (वजन के आधार पर) $\mathrm{Pd} = \frac{w_1 - w_2}{w_2} \times 100$

यदि इसी सुत्र से भूमि में उपस्थित जल का आयतन Pv निकालना हो तो–

नमी आयतन के आधर पर (Pv) = Pd × BD BD = Bulk Density प्रपुन्ज घनत्व

यदि किसी को Pv ज्ञात हो तो

नमी वजन के आधर पर $(\mathrm{Pd}) = \frac{Pv}{BD}$

यद्यपि यह कहा जा चुका है कि फिल्ड कैपेसिटी से परमानेन्ट विल्टिंग प्वाइंट अर्थात 0.33 बार से –15 बार वायूमंडलीय दाब तक का मृदा जल उपलब्ध जल (Available Water) कहलाता है, परन्तु यह सच है कि Field Capacity (FC) से Permanent Wilting Point (PWP) तक नमी पौधों को एक समान नहीं उपलब्ध होती। FC से कुछ नीचे तक जल पौधों को एक समान रूप से उपलब्ध होता है। फिर धीरे–धीरे घटते हुये PWP पर शून्य बिन्दु पर पहुँच जाता है।

चित्र

यहाँ यह भी जान लेना आवश्यक होगा कि सिंचाई की आवश्यकता तभी पड़ जाती है, जब तक लगभग 50% उपलब्ध मृदा जल ही खर्च हुआ होता है। विभिन्न फसलों के लिये इस सीमा के परिवर्तन अपेक्षित है, परन्तु यह भी उतना ही सच है कि सिंचाई के लिये कोई PWP तक पहुँचने की प्रतीक्षा नहीं करता। इसी पहलु ने इस बात की आवश्यकता पर बल दिया है कि यह सुनिश्चित किया जाय कि किसी फसल में सिंचाई कब दी जाय।

4.1.5.2 फसलों में सिंचाई कब और कितनी

फसलों में सिंचाई कब दी जाय, इसका निर्धारण मिट्टी में नमी, पौधों की आवश्यकता एवं पौधों की अवस्था पर निर्भर करता है।

4.1.5.3 पौधों की अवस्था

पौधे अपने जीवन काल में कुछ क्रान्तिक अवस्थाओं से गुजरते हैं, जब उन्हें अतिरिक्त नमी एवं पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। यदि इन क्रान्तिक अवस्थाओं में नमी की कमी हुई तो उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जिसकी पूर्ति बाद में नहीं हो सकती है। इन क्रान्तिक अवस्थाओं में पौधे या तो अपने प्रजनन काल में प्रवेश करते हैं, या उनमें परागण होता है, या दानों का भराब होता है। विभिन्न फसलों में ये अवस्थायें अलग अलग हो सकती हैं।

कुछ मुख्य फसलों का क्रान्तिक अवस्थायें

	फसल	क्रान्तिक अवस्थायें
1.	धान	वालियों के निर्माण का प्रारम्भ, पुष्पन
2.	गेहूं	शीर्ष जड़ निकलने की अवस्था, तने में

		जुड़ाव की अवस्था एवं दानों में दूध की अवस्था
3.	मक्का	तीब्रतम वानस्पतिक वृद्धि की अवस्था (घुटने की उँचाई की अवस्था), एवं धनबाल निकलने की अवस्था
4.	अरहर, चना, मूंग, उड़द	50% पुष्पन एवं फली निर्माण
5.	मूंगफली	पुष्पन, Pegging, फलियों के निर्माण की प्रारम्भिक अवस्था
6.	आलू	कन्दों के निर्माण का प्रारम्भ से लेकर कन्दों के पूर्ण बढ़ाव तक
7.	प्याज	Bulb बनने की शुरूआत से लेकर पूर्ण आकार लेने तक

सामान्यतः अन्य सभी फसलों में उनका पुष्पन एवं दानों के भराव का समय क्रान्तिक होता है। इन अवसथाओं में मृदा में नमी की कमी नहीं होनी चाहिये।

4.1.6 सिंचाई की आवश्यकता के अनुमान की विधियाँ

(क) तीव्र जल स्त्राव का तरीका : यदि किसी खेत (Plot) के अन्दर एक वर्ग मीटर की भूमि की मिट्टी खोद कर निकाल ली जाय और पुनः उस स्थान को बालू मिली मिट्टी से भर दिया जाय। फसल लगने के बाद जब भी नमी की कमी होने लगेगी तो सबसे पहले बलुआही स्थल के पौधे सूखने लगेंगे। यह इस बात का संकेत होगा कि फसल की सिंचाई तुरंत कर दी जाय।

(ख) पूर्व की तरह खेत में एक वर्ग मीटर का स्थान चुन कर वहाँ खूब घनी बोआई की जाय। सबसे पहले उसी स्थान पर नमी की कमी होगी, जो सिंचाई की आवश्यकता का पूर्व संकेत होगा।

(ग) खेत की 25 से. मी. तक की गहराई तक की मिट्टी निकाल कर एक गोला बनाया जाय तथा उसे कुछ उँचाई तक उपर फेंक कर नीचे गिरने दिया जाय। यदि मिट्टी टूट कर बिखर जाय, तो समझे कि खेत को सिंचाई की आवश्यकता है।

(घ) सिंचाई के बाद सामान्यतः मिट्टी अपनी फिल्ड कैपेसिटी (Field Capacity) की अवस्था में आ जाता है। Field Capacity (FC) से Permanent Wilting Point (PWP) के बीच के जल की मात्रा को उपलब्ध जल की संज्ञा दी जाती है। कुछ फसलें जिनकी जल की आवश्यकता अपेक्षाकृत अधिक है, जैसे मक्का, गेहूँ, गन्ना, आलू इत्यादि उनमें उपलब्ध जल में से केवल 25% जल कम होते ही सिंचाई की आवश्यकता पड़ जाती है। कुछ फसलें जिनमें सूखा सहन करने की क्षमता अपेक्षाकृत अधिक होती है, जैसे ज्वार, बाजरा, मडुआ, कपास इत्यादि उनमें उपलब्ध जल में 50% की कमी आते ही सिंचाई कर दी जाती है। धान जैसी फसल में तो अधिकांश समय तक खेत में जल स्तर बना ही होता है, परन्तु उसे पूर्ण संतृप्तता के स्तर (Saturation Point) से नीचे नहीं आने देते हैं, और उसके पहले ही सिंचाई कर देते हैं। अरहर, कुसुम जैसे फसलें जिनकी जड़े काफी गहराई तक जाती हैं, वे बिना किसी सिंचाई के अपनी पूर्ण क्षमता तक की उपज दे सकती है।

(ड़) भूमि में उपलब्ध नमी की गणना एक यंत्र के द्वारा भी किया जा सकता है, जिसे टेन्सियोमीटर (Tensiometer) या इर्रोमीटर (Irrometer) कहा जाता है। सिंचाई का समय ज्ञात करन में इसकी उपयोगिता के कारण इसे इर्रोमीटर की संज्ञा दी गई है। यह यंत्र मिट्टी में उपलब्ध नमी की स्थिति उस खिंचाव (Tension) के आधार पर बदलता है, जिसके द्वारा जल मिट्टी कणों से जुड़ा होता है।

(च) आई डब्लू/सी पी. इ (IW/CPE) सिंचाई निर्धारण की अद्यतन विधि वर्तमान समय में सिंचाई करने के सही समय निर्धारण करने की एक विधि विकसित की गई है। इसके अन्तरगत पहली सिंचाई देते समय उसकी कुल मात्रा

गहराई में (Depth of water) माप ली जाती है, जैसे 8 से.मी. या 10 से.मी. की सिंचाई। इसे सिंचाई जल या IW (Irrigation Water) कहा जाता है। उसके बाद पानी के सतह से (Open pan Evaporimeter) होने वाले वाष्पीकरण की मात्रा को नियमित रूप से दिन प्रतिदिन जोड़ते जाते हैं, जिसे Cummulative Pan Evaporation (CPE) की संज्ञा दी गई। अब IW और CPE का अनुपात हर समय उपलब्ध रहेगा। पुनः हर प्रकार की फसलों के लिये IW/CPE का एक अनुपात तय कर लिया गया, जिस स्तर तक मृदा की नमी में हुई कमी के बाद सिंचाई अनुशंसित होगी। उदाहरण के लिये एक फसल में 8 से.मी. की सिंचाई दी गई। जब CPE का मान 10 से.मी. हो जायेगा तो IW/CPE = 8/10 = 0.8 होगा। अतः यह अनुशंसा की जा सकती है कि इस फसल को उस समय सिंचाई दें, जब IW/CPE मान 0.8 हो जाये। सामान्यतः 0.75 से 0.8 के IW/CPE मान पर गेहूँ, मक्का जैसी फसलों में सिंचाई दी जाती है। धान में यह मानक 10 या 10 से उपर पर ज्वार, बाजरा, मडुआ, तेलहन, दलहन जैसी फसलों में यह मानक 0.65 तक नीचे जा सकता है। सामान्यतः विभिन्न फसलों में एक बार में 4 से 6 से.मी. की सिंचाई दी जाती है, जो मिट्टी की बनावट (Texture) पर निर्भर करता है।

4.1.7 भारत में सिंचाई जल की उपलब्धता

सिंचाई जल का एक मात्र मूल श्रोत वर्षा है। भारत भूमि का लगभग 40 करोड़ हे. मी. वर्षा होती है। इसमें 7 करोड़ हे. मी. वाष्पीकृत होकर वायूमंडल का हिस्सा बन जाता है। 5 करोड़ हे. मी. भूगर्भीय जल के रूप में संग्रहित होता है, तथा 16.5 करोड़ हे. मी. मिट्टी में नमी के रूप में उपस्थित रहता है। कुल वर्षा का लगभग 11.5 करोड़ हे. मी. भूमि की सतह से बहता हुआ नदी–नालों से होकर समुद्र में मिल जाता है। इसमें से कुछ हिस्सा तालाबों और कुओं में संग्रहित होता है।

इससे दो बातें बहुत स्पष्ट रूप से सामने आती हैं। पहली बात है कि सिंचाई के लिये उपलब्ध जल आवश्यकता से काफी कम है, और वर्षा का एक बहुत बड़ा भाग बह कर नदी–नालों से होते हुये समुद्र में मिल जाता है।

4.1.8 विभिन्न फसलों की सिंचाई जल की कुल आवश्यकता

एक औसत आकलन के आधार पर विभिन्न फसलों की जल की कुल आवश्यकता निम्नलिखित है–

	फसल	जल की कुल आवश्यकता (cm)
1.	धान	200 से 300
2.	ज्वार	50.0
3.	बाजरा	50.0
4.	मक्का	62.5
5.	मूंगफली	50.6
6.	गेहूँ	28.0
7.	मडुआ	31.0

4.2 प्रक्षेत्र क्षमता (Field Capacity), स्थायीम्लानि बिन्दु (Permanent Wilting Point), पौधों के लिये उपलब्ध जल (Plant Available Water)

मृदा जल मृदा संगठन का यह तरल घटक है। मृदा जल, मृदा पौध संबंधों में एक महत्वपूर्ण भुमिका निभाता है। ज्यादातर जल, पौधों के द्वारा भूमि से जड़ो के माध्यम से अवषोषित किया जाता है। हाँलांकि अत्यन्त कम मात्रा में यह सीधे वर्षा–जल से या बासे के द्वारा अवषोषित होता है। मृदा वातन एंव मृदा ताप को भी यह निर्धारित करता है। उचित मृदा एंव जल प्रबंधन पौधों की वृद्वि एवं बढ़वार के लिये सहायक होता है।

भूमि में जल के कार्य – भूमि में पौधों की उचित बढ़वार एंव वृद्वि के दृष्टिकोण से जल का होना आवष्यक है, क्योंकि भूमि में यह विभिन्न निम्न कार्यो को संपादित करने के लिए आवष्यक होता है।

1. विभिन्न भौतिक एवं जैविक क्रियाओं को प्रोत्साहित करने के लिये।
2. यह पोषक तत्वों के धोतक एंव वाहक का कार्य करता है।
3. यह स्वयं एक पाष्व तत्व का कार्य करता है।
4. प्रकाष संष्लेषण के लिये यह आवष्यक है।
5. यह पौधों के कड़ेपन को बनाये रखता है।

भूमि में पानी कहाँ विद्यमान होता है– भूमि के रन्ध्राकाष पानी की उपस्थिति को संभव बनाते है। प्राकृतिक रूप से भूमि में जल की मात्रा रन्ध्राकाषो के आकार, रूप एवं उनकी जमावट तथा उनकी संधनता की स्थिति आदि पर र्भिर करता है। भूमि में दो प्रकार के रन्ध्राकाष पाये जाते है, जो निम्नानुसार

1. **दीर्ध रन्ध्राकाष –** कुछ रन्ध्राकाष, विषेषकर जब मृदा बलुई हो या अच्छी दानेदार हो ये पर्याप्त के होरे के कारण गुरूत्वीय बल से पानी के नीचे जाने की चाल को सुगम बनाते है, इन रन्ध्राकाषों को दीर्ध या बड़े रन्ध्रकाष कहते है। दीर्ध रन्ध्राकाष, मृदा के बड़े दानों एवं छोटे दानों के बीच में पाये जाते है, जिनकी जमावट अनियमित होती है।
2. **सूक्ष्म–रन्ध्राकाष –** मृदा–रन्ध्राकाष जो अत्यन्त सूक्ष्म होत है एवं जल की गति को रोक देते है इन्हे सूक्ष्म्र–रन्ध्राकाष कहते है। ऐसी रन्ध्राकाषों की संख्या, भारी मिट्टियों में ज्यादा होती है।
3. **मृदा में जल धारण –** मृदा में पानी कैसे धारित रहता है मृदा में उपस्थित जल, मृदा से अलग क्यों नही होता है। इन दोनो प्रष्नों के उत्तरों को इस प्रकसार से व्यक्त किया जा सकता है।

मृदा में पानी कैसे धारित रहता है मृदा में उपस्थित जल, मृदा से अलग क्यो नही होता । इन दोनो पष्नों के उत्तरों को इस प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है।

जब भूमि या अन्य माध्यम के द्वारा जल सोखा जाता है तब ताप के रूप में उससे ऊर्जा मुक्त होती है। अगर इस प्रक्रिया को उल्टा किया जाय अर्थात सोखे हुए पानी को मृदा से अलग किया जाय तब पानी को मृदा या अन्य माध्यम से अलग करने के लिये एक निष्चिय मात्रा में बल की आवष्यकता होगी। मृदा में विद्यमान वे बल जिनके कारण मृदा में जल धारित रहता है वे दो प्रकार के होते है। इन्ही बलों के कारण मृदा से जल अलग नही हो पाता है अथवा उसमें बना रहता है। इन दोनों बलों का विवरण इस प्रकार है।

1. आसंजन – ठोस सतहों (मृदा कणों) का पानी के अणुओं के लिये आकर्षण, आसंजन कहलाता है। इस आकर्षण में लगने वाले बल को आसंजक बल कहते है। यह बल पानी को ठोस सतह (क्लेस) पर अधिषोषित कर लेता है। ये अणु आपस में इलेक्ट्रोस्टेटिक फोर्स के कारण बने रहते है। यह बल एक विद्युतीय क्षेत्र के काम करता है जो मृदा कणों के आंतरिक एंव बाह्य सतहो पर होता है। चूँकि, आसंजन केवल ठोस एवं तरल सतहों पर की कार्य करता है अतः इससे बनने वाले जल की परत बहुत पतली होती है।

2. ससंजन – पानी के अणुओं का एक दूसरे के प्रति आकर्षण ससंजन कहलाता है। आसंजन के द्वारा निर्मित अत्यन्त पतली परत के ऊपर इस बल के कारण पानी की परत की मोटाई बढ़ती जाती है जब तक कि पानी, गुरूत्वीय आकर्षण से नीचे गतिमान न हो जाय।

इस प्रकार इन दोनों बलो के कारण मृदा में केषीय रन्ध्राकाष मृदा जल से भरे रहते है। जब पानी की परत पर्याप्त मोटी हो जाती है, तब कुछ जल गुरूत्वाकर्षण के कारण नीचे की ओर बड़े –रन्ध्राकाषों के माध्यम से गति करने लगता है। इसलिये, जब मृदा लगभग संतृप्त हो तब उसमें से पानी की कुछ मात्रा लेने के लिये असानी होगी अर्थात् कम बल की आवष्यकता होगी, परंतु मृदा में जैसे–जैसे पानी की मात्रा कम होती है मृदा से इकाई जल अलग करने के लिये अधिक बल की आवष्यकता पड़ती है। इन बलों को बार या एटमॉसफियर के रूपों में मापते है।

मृदा जल का वर्गीकरण – मृदा जल को मृख्यत दो प्रकार से वर्गीकृत किया गया है। मृदा जल के गुणांको एवं जल की प्राप्यता को आधार मानते हुए मृदा जल को क्रमष भौतिक एवं जैविक वर्गीकरण के रूप में निम्नानुसार वर्गीकृत किया गया है।

मृदा जल का भौतिक वर्गीकरण

1. आर्द्रताग्राही जल
2. केषीय जल

3. गुरूत्वीय जल

मृदा जल का जैविक वर्गीकरण

1. आवष्यकता से अधिक जल

2. प्राप्य जल

3. अप्राप्य जल

इस वर्गीकरण में, मृदा में जल, जिस तनाव पर विद्यमान रहता है उसके आधार पर जल का वर्गीकरण किया गया है। इन तनावों को गुणांकों के नाम से भी जाना जाता है।

1. आर्द्रताग्राही जल – आर्द्रताग्राही जल में वह जल सम्मलित है जो आर्द्रताग्राही गुणांक पर उपस्थि होता है एवं यह जल 31 वायुमण्डलीय तनाव या इससे भी अधिक तनाव पर भूमि में विद्यमान होता है। यह जल ठोस–तरल अन्तःपृष्ठों पर एक बहुत पतली परत के रूप में होती है एवं बहुत षक्ति से चिपकी होती है। जल की यह परत 3–10 पानी के अणुओं की परत के अणु आपस में सधनता से चिपके रहते है एवं अत्यधिक दबाव के कारण ये अतरल रूप में होते है। ठोस–द्रव अन्तपृष्ट पर यह दबाव 10,000 वायुमण्डलीय तनाव के बराबर होता है। आर्द्रताग्राही जल या आर्द्रताग्राही गुणाँक के पास पानी के बाहरी सतह पर या तनाव लगभग 31 वायुमण्डलीय तनाव के बराबर होता है। चूँकि यह जल अतरल रूप में एवं अचल होता है। अतः यह पौधों के जैवीय क्रियाओं में योगदान नही होता है। ऐसे जल–धारित मृदा को यदि 10–110^0 सें ग्रें के तापमान पर 8–12 धंटो के लिये गर्म करे तब यह जल मृदा से अलग हो पाता है।

आर्द्रताग्राही जल के गुण

1. आर्द्रताग्राही जल वह जल है जो आर्द्रताग्राही गुणांक पर धारित होता है।

2. तनाव 31 से 10,000 वायुमण्डलीय तक होता है।

3. यह जल ज्यादातर मृदा कोलाइड्स के द्वारा धारित होता है।

4. यह सामान्यतः अतरल रूप में होता है अतः यह जैविक रूप से सक्रिय नही होता है।

5. ज्यादातर यह वाष्पीय रूप से गति करता है।

6. यह मृदा–विन्यास एवं कार्बनिक पदार्थो से संबधित होता है।

केषीयबल

जल क्षेत्र धारिता एवं आर्द्रतात्राही गुणांक के बीच में धारित होता है उसे केषीय जल कहते है। केषीय जल ही एक मात्र तरल जल है जो लवणों के साथ मृदा–विलय के रूप में मृदा में विद्यमान रहता है। यह भौतिक एवं रासायनिक दोनो रूपों में कार्य करता है। इसे मृदा–विलयन भी कहा जा सकता है।

मृदा में केषीय जल धारण क्षमता को विभिन्न कारक प्रभावित करते है, जैसे– मृदा संगठन एवं मृदा संरचना आदि।

मृदा संगठन – महीन संगठन वाली मृदा में केषीय जल धारण क्षमता अधिक होती है जबकि मोटे संगठन वाले मृदाओ में कम। यह इसलिये क्योकि महीन संगठन वाली मृदाओ में सूक्ष्म रन्ध्राकाषों की संख्या अधिक होती है जो अधिक केषीय जल को धारित रन्ध्राकाषों की संख्या एवं कुल स्थान जयादा होते है अतः अधिक जल को धारण करने की क्षमता रखते है । भारी मृदाओ को सधन करने पर, सूक्ष्म–रन्ध्राकाषा के स्थान कम हो जातें है अतः रन्ध्राकाषा में जल धारण क्षमता भी कम हो जाती है। परंतु बलुई मिट्टियों को सधन करने या दबाने पर बड़े रन्ध्राकाषों की जगह कम हो जाती है अत ऐसी भूमियों की जल धारण क्षमता बढ़ जाती है।

केषीय जल के गुण

1. केषीय जल वह जल है जो सूक्ष्म कोषिकाओं द्वारा धारित किया जाता है।

2. यह सूक्ष्म केषिकाओं में क्षेत्र क्षमता एवं आर्द्रताग्राही गुणांक की बीच में धारित होता है।

3. जल के परत पर तनाव 1/2 से 31 वायुमण्डल तक होता है।

4. यह मृदा–विलयन के रूप में कार्य करता है।

5. यह जल परत के मोटे से पतले परत की ओर गति करता है।

6. यह मृदा जैविक पदार्थ एवं मृदा संगठन से समवद्व होता है।

गुरूत्वीय जल

वह जल जो 1/3 या उससे कम ऋणात्मक तनाव पर धारित होता है एवं गुरूत्वीय बल के खिचाव के कारण नीचे की ओर गति करता ह। उसे गुरूत्वीय जल कहते है। जो पानी नीचे की ओर गति करता है वह बड़े–रन्ध्राकाषों में उपस्थित रहता है। पौधों के लिये गुरूत्वीय जल का उपयोग नही होता है जबकि यह जल बड़े रन्ध्राकाषों में उपस्थित होने के कारण, उस जल निकास वाली भूमियों में ऑक्सीकरण की क्रिया को बाधित कर देता है। अर्थात, मृदा में प्रक्रियाएँ एवं अनुकूल भौतिक संबंध खराब हो जाते है।

1. गुरूत्वीय जल के गुण –

1. गुरूत्वीय जल, स्वतंत्र जल है जो बाहर निकल जाता है।

2. यह ढ़ीलेपन से धारित होता है एवं इसमें वायुमण्डलीय दाब 0.1 से 0.5 वायुमण्डल से भी कम हो सकता है।

3. यह पौधे के उपयोग हेतु अनुपलब्ध जल होता है जल निकास के माध्यम से बाहर निकल जाता है।

4. जल निकास का जल पौध पोषक तत्वों को विलेय कर लेता है जिससे वे नष्ट हो जाते है।

2. मृदा जल का जैविक वर्गीकरण – पौधों के त्वरित विकास के लिये भूमि में विद्यमान सब जल उपलब्ध नही होता है। पौधों की उपयोगिता के आधार पर पानी को निम्न तीन भागों में बाँटा गया है।

1. आवष्यकता से अधिक जल – वह जल जो 1/3 या उससे कम वायुमण्डलीय तनाव पर विद्यमान हो अथवा वह जल जो प्रक्षेत्र क्षमता है। यह अतिरिक्त जल है। वास्तव में यदि यह जल अधिकता से भूमि में विद्यमान हो तो यह ऐसी स्थिति निर्मित कर देता है कि वह पौधों की बढ़वार के विपरीत हो जाता है। इनमें से एक स्थिति मृदा में वातन की समस्या हो सकती है, जिनमें पौधों की जड़ो के लिये श्वसन हेतु ऑक्सीजन की प्राप्ति नही हो पाती। अच्छा वातन के न रहने पर, भूमि में विभिन्न जैव–रासायनिक क्रियाएँ जैसे– नाइट्रीकरण, नाइट्रोजन स्थिरीकरण, अपधटन आदि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यह अतिरिक्त जल धुले हुए पोषक–तत्वों के नष्टीकरण के लिये जिम्मेदार होता है।

2. प्राप्य जल – केषीय जल का वह भाग जो क्षेत्र क्षमता (1/3 वायुंमण्डलीय तनाव) एवं मुर्झान गुणांक (15 वायुमण्डलीय तनाव) के बीज का होता है, उसे प्राप्य जल कहते है। पौधों की सूखे को सहने की क्षमता अलग–अलग होती है। ऐसे पौधे जिनकी जड़ो का विकास सुविस्तारित होता है, जिससे वे ज्यादा क्षेत्रफल एवं गहराई से जल का अवषोषण कर लेते है, अतः वे सूखे को सहने में सक्षम होते है।

3. अप्राप्य जल – यह वह जल है, जो भूमि में स्थाई मुर्झान बिन्दु (Permanent Wilting Point) पर धारित होता है। इसमें आर्द्रताग्राही जल सम्मिलित है, जो पौधों के द्वारा मुरझाने से बचने के लिये अत्यन्त मन्द गति से अलग किया जाता हैं। आंतरिक केषीय नमी केवल कुछ पौधों के लिये उपयोगी होता है। जो षुष्क क्षेत्रों में ऊगने के लिये अनुकूलित हो। यह जल जैविक कोलायड्स पर ऊग रहे जीवाणुओं एवं कवकों के लिये उपयोगी हो सकता है। परंतु यहॉ पर भी जीवाणुओं की क्रिया काफी मंद पड़ जाती है। यह जल उच्च–पौधों के लिये अनुपयोगी होते है।

मृदा नमी स्थिरांक

मृदा जल को प्रदषित करने के लिये अनेक मृदा नमी स्थिरांक उपयोग किये जाते है इन स्थिराकों के मुख्य विवरण इस प्रकार है।

1. आर्द्रताग्राही गुणांक – जब एक षुष्क मृदा नमूना को जल–वाष्प में खुला रखा जाता है यह कुछ नमी अधिषोषित करता है। यह अधिषोषण तापमान, आर्द्रता एवं पृष्ट फैलाव पर निर्भर करता है। इस प्रकार जो नमी द्वारा अधिषोषित की जाती है उसे आसंजन जल या आर्द्रताग्राही जल कहते है। यह अधिषोषित पानी की मात्रा का प्रदर्षित करता है जो मृदा कणों के पृष्ठ पर वायुमण्डल के एक निष्चित आपेक्षित आर्द्रता से अधिषोषित होता है।

खनिज मृदाओं में आर्द्रताग्राही गुणॉक लगभग 31 वायुमण्डल होता है। जब जल की परत एकदम पतली होती है तब इसका मान 10,000 वायुमण्डल तक बढ़ता है। यह मृदा जल का एक मापन है जो अति उच्च तनाव पर धारित होता है। आर्द्रताग्राही गुणॉक पर जो बल कार्य करते है, वे मुख्यतः मृदा कोलायड्स (Clay) के द्वारा पानी के अणुओं को आकर्षित करने के कारण होता है।

2. प्रक्षेत्र क्षमता या क्षेत्र धारिता – जब एक अच्छे दानेदार संरचना वाली भूमि को पानी से पूर्ण संतृप्त किया जाता है एवं जल निथार के लिये पर्याप्त समय दिया जाता है, पानी का कुछ भाग गुरूत्वीय आकर्षण के कारण नीचे की ओर गति करता है। पानी के नीचे की ओर गति करने को जल–निकासी अथवा अन्तःस्रवण कहते है। जो भी जल 1/3 वायुमण्डलीय तनाव पर धारित होता है वह सब इस प्रकार से गतिमान होता है कि सम्पूर्ण गुरूत्वीय जल का निथार हो जाता है एवं पानी का नीचे की ओर गति करना व्यवहारिक रूप से खत्म हो जाता है। इस प्रकार दीर्ध्र रन्ध्राकाषों एवं बड़ी केषिकाओं से पानी का निथार हो जाता है। जब मृदा जिसकी संस्तर से अतिरिक्त जल नीचे चला जाता है ऐसी दषा में मृदा को क्षेत्र क्षमता या अधिकतम केषिका क्षमता में होना कहा जाता है।

विष्लेषण के रूप में क्षेत्र क्षमता षुष्क आधार पर पानी की प्रतिषत मात्रा है जो अनुकूल जल निथार की दषओं में मृदा के किसी स्तर द्वारा गुरूत्वीय बल के विरूद्व धारण किया जाता है। भारी विन्यास वाली मृदाओं एवं उच्च कलिलता वाली मृदाओं में उच्च क्षेत्र क्षमता होती है। मृदा में जैविक पदार्थो की उपस्थिति इस मान को बढ़ाते है। क्षेत्र क्षमता भूमि के विन्यास के साथ परिवर्तित होता है एवं मोटे विन्यासित मृदाओं की ओर बढ़ता है।

3. स्थाई म्लानी बिन्दु या मुर्झान प्रतिषत – एक हरे पौधे को उसकी उचित बढ़वार एवं वृद्वि के लिये पानी की आवष्यकता होती है एवं वाष्पोत्सर्जन द्वारा हो रहे पानी की हानि की पूर्ति करने के लिये पौधा अपनी जड़ो के माध्यम से भूमि से ऑसमोसिस के द्वारा पानी लेता है। जब भूमि में नमी की मात्रा उस सीमा तक कम हो जाती है, पौधा वाष्पोत्सर्जन एवं अपना फुलाव बनाये रखने के लिए उसकी जड़े पानी लेने में असमर्थ हो जाती है एवं पौधा मुरझाना षुरू कर देता है। इस अवस्था पर यदि पौधे को एक संतुप्त वायुमण्डल में रखा जाता है, तब भी पौधा अपना फुलाव पुन प्राप्त नही कर पाता है एवं मुर्झा जाता है। सामान्यत जिन मृदाओं में अधिक क्षेत्र क्षमता होती है उनमें अधिक मुर्झान गुणांक भी होता है। यह मृदा की उस नमी मात्रा से संबधित है जब मृदा पौधों को उनके अनुरूप जल प्रदान करने में असमर्थ हो जाता है। पौधों में जल स्थाई मुर्झान की अवस्था आती है तब मृदा–जल लगभग 15 वायुमण्डलीय तनाव पर धारित होता है। इस तनाव पर मृदा जल मृदा कणों के ऊपर एक पतली परत के रूप में विद्यमान होता है। इस तनाव पर केषिका संचारिता षून्य होती है तथा जल की गति वाष्पीय रूप में होती है।

4. मृदा नमी समतुल्यॉक – यह पानी की प्रतिषत मात्रा जो एक संतृप्त मृदा नमूना द्वारा गुरूत्वीय बल से 1000 गुना अधिक अपकेन्द्रीय बल लगााने पर भी मृदा द्वारा धारित रहता है। प्रारंभिक रूप से संतृप्त मृदा को एक निष्चित समय तक सामान्य तौर पर आधे धंटे के लिये अपकेन्द्रीय बल लगााते है। मध्यम विन्यास वाली मृदाओं में, क्षेत्र क्षमता, नमी सम तुल्यॉक के मान लगभग बराबर–बराबर होते है परंतु, बलुई भूमियों में, क्षेत्र क्षमता, नमी समतुल्यॉक से अधिक होता है। उच्च मृत्तिका धारित मृदाओं में क्षेत्र क्षमता नमी समतुल्यॉक से सामान्यत कम होता है।

मृदा नमी स्थिरांकों का मान भूमि के प्रकार के अनुसार परिवर्तनीय होता है। मृदा विन्यास इन स्थिरांको को ज्यादा प्रभावित करता है। कुछ मृदाओं में मृदा नमी स्थिरांको का मान इस प्रकार पाया जाता है।

मिट्टियों को उपलब्ध जल धारण क्षमता की सीमा

षुष्क भारधारित नमी प्रतिषत			
भूमि के प्रकार	**क्षेत्र क्षमता**	**म्लानि बिन्दु**	**उपलब्ध जलधारण क्षमता**
महीन रेत	3-5	1-3	2
बलुई दोमट	5-15	3-8	2-7
सिल्ट लोम	12-18	6-10	6-8
क्ले लोम	15-30	7-16	8- 14
क्ले	25-40	12-20	13-20

4.3 सिंचाई (Irrigation) की विधियाँ

भूगर्भीय जल एवं वर्षा से प्राप्त संरक्षित जल के आकलन एवं अध्ययन से अनुमान लगाया गया है कि यदि भारतवर्ष में सम्पूर्ण जल श्रोतों का उपयोग कर लिया जाय, तब भी लगभग 50% कृषिगत क्षेत्र असिंचित रह जायेगा। यह आकलन देश के पठारी एवं रेगिस्तानी क्षेत्रों, विभिन्न क्षेत्रों की वार्षिक औसत वर्षा, तथा वर्षा जल के संग्रहण के

आधार पर कहा गया है। यहाँ इस तथ्य को इसलिये उद्धृत किया गया है क्योंकि सिंचाई के समुचित तरीके के उपयोग के द्वारा उपलब्ध सिंचाई जल से, अधिक से अधिक भूमि में सिंचाई की जा सके। सिंचाई की दो विधियाँ हो सकती हैं। पहली सतही सिंचाई (Surface Irrigation) और दूसरी अन्तः सिंचाई (Sub-Surface Irrigation).

4.3.1 सतही सिंचाई की विधियाँ

1. जल प्लावन (Flooding)– यह विधि, बहुधा, धान की फसल में अपनाई जाती है, जिसमें खेत के किसी हिस्से में थोड़ा अधिक जल जमा हो जाने से भी कोई विशेष क्षति अपेक्षित नहीं है। धान का खेत सिंचाई के समय भी या तो, गीला होता है अथवा छिछला पानी जमा होता है। ऐसे में सिंचाई जल आराम से सारे खेत में फैल जाता है। अतः सिंचाई के लिये बहुत सारे श्रमिकों की आवश्यकता नहीं होती। धान के अतिरिक्त चारे की फसल बरसीम में भी अधिकांशतः इसी विधि से सिंचाई की जाती है।

2. चेक बेसिन विधि (Check basim Method) – यह सिंचाई की सबसे ज्यादा ग्राह्य विधि है। जिन फसलों के पौधे अपेक्षाकृत पास–पास लगने वाले होते हैं, जैसे गेहूँ, बाजरा, मडुआ, सरसो, मूंगफली, मूंग, उड़द इत्यादि उनमें यह विधि ज्यादातर अपनाई जाती है। इस विधि में पूरे खेत को छोटे–छोटे टुकड़ों में विभाजित कर उनकी क्रमिक सिंचाई की जाती है, ताकि खेत का सम्पूर्ण भाग समान रूप से सिंचित हो और कहीं जल जमाव नहीं हो। जल–जमाव का अर्थ है, जड़ क्षेत्र में उपस्थित सारे मृदा रंध्रों (Soil Pores) में जल का भर जाना। दीर्घ रन्ध्र (Macro Pores) जिनमें सामान्य रूप में वायू स्थित होती है, उनमें भी हवा भर जाती है। फलस्वरूप जड़ों की कोशिकाओं तक का वायू संचार बाधित हो जाता है, और वहाँ की कोशिकाओं की साँसे, अवरूद्ध हो जाती है। इसके परिणाम स्वरूप पौधे को जो क्षति पहुँचती है, उसकी क्षतिपूर्ति कभी नहीं हो पाती। इसके अतिरिक्त यह जमा जल अपने साथ घुलनशील पोषक तत्वों को जड़ क्षेत्र से नीचे ले जाकर पौधों के लिये अप्राप्य बना देता है। अतः खेतों की टुकड़ों में विभाजित कर सिंचित करना श्रेयस्कर विधि मानी जाती है। चेक बेसिन विधि में, सामान्यतः, पूरे खेत को वर्गाकार टुकड़ों में विभाजित करते हैं। हर टूकड़ा हल्के मेड से घिरा होता है। ये मेड़े रीजर या देशी हल से बनाई जाती है। जिनमें कुदाल से हल्की मरम्मत (Dressing) कर दी जाती है। सामान्यतः एक नाली से आने वाली जल धारा अगल–बगल के दो कतारों के टुकड़ों की सिंचाई करता है। इन टुकड़ों का आकार, सामान्यतः 4 मी. × 3 मी. से लेकर 6 मी. × 5 मी. तक रखा जा सकता है। जल के बहाव और मिट्टी की बनावट के आधार पर टुकड़ों का आकार निर्भर करता है। यदि मिट्टी में बालू का अंश ज्यादा है तो टूकड़े अपेक्षाकृत छोटे होने चाहिये। इस विधि में श्रमिकों की आवश्यकता अपेक्षाकृत अधिक होती है। निकाई–गुड़ाई के बाद नालियों एवं मेड़ों की हल्की मरम्मत (Dressing) करनी होती है। यह विधि समतल भूमि के लिये ज्यादा उपयुक्त होगी।

3. बोर्डर विधि (Border Method) – यह चेक बेसिन का ही थोड़ा अलग रूप है, जो अपेक्षाकृत ढालुआँ खेतों के लिये ज्यादा उपयुक्त है। इसमें मिट्टी को बनावट (Texture), जल की धारा और फसल के अनुरूप टुकड़ों की चौड़ाई 3 से 15 मीटर और लम्बाई 30 से 300 मीटर तक रखी जा सकती है। यद्यपि अधिकांशतः टुकड़ों की चौड़ाई 3 से 5 मीटर तथा लम्बाई 30 से 50 मीटर तक रखी जाती है। खेत के टुकड़ों की लम्बाई ढाल की ओर रखी जाती है। एक बार में एक टुकड़े में सिंचाई जल छोड़ा जाता है, यह विधि हल्की मिट्टियों के लिये ज्यादा उपयुक्त नहीं होगी। जब पानी खेत के एक टुकड़े की लम्बाई के 70% भाग तक पहुँच जाता है तो पानी का मुँह दूसरे टुकड़े की ओर मोड़ देते हैं। पहले टुकड़े का शेष भाग बहाव के क्रम में स्वत पट जाता है। इस विधि में चेक बेसिन विधि की अपेक्षा कम श्रमिक होते हैं।

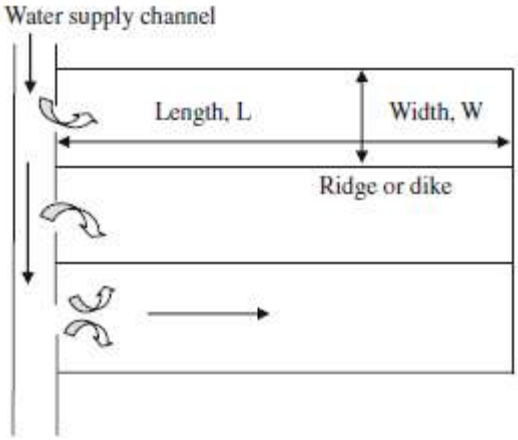

चित्र : बोर्डर विधि

4. बेसिन विधि (Basin Method) – यह विधि फल के बगीचों या दूर–दूर पर लगी सब्जियों के लिये अनुकूल है। जल अनावश्यक रूप से पूरे खेत को प्लावित नहीं करे, इस उद्देश्य से प्रत्येक पौधे के चारो ओर पतला और गड्ढा बनाया जाता है, जहाँ तक नालियों द्वारा सिंचाई जल पहुँचाया जाता है। नये लग रहे फलदार बगीचों एवं कुछ सब्जियों के लिये यह अत्यन्त कारगर विधि है।

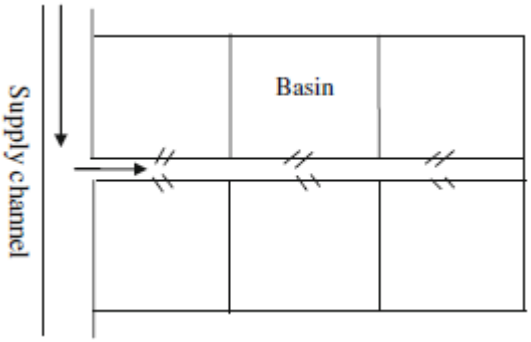

चित्र : बेसिन विधि

5. कूंड विधि (Furrow Method) – यह एक अत्यन्त उत्तम कारगर एवं सहजता से अपनाये जाने वाली सिंचाई विधि है। इसमें जल का बेहतर उपयोग होता है। यह विधि दूर–दूर पर लगाई जाने वाली फसलों जैसे मक्का, गन्ना, आलू इत्यादि के लिये ज्यादा उपयुक्त है। कुछ फसलों में पौधें को गिरने (Lodging) से बचाने के क्रम में अथवा स्वयं पौधे रोपनी (आलू–गन्ना) के क्रम में पंक्तियों के बीच मेड़ (Ridge) एवं नाली (Furrow) बन जाते हैं। इन नालियों का उपयोग सिंचाई की बेहतर विधि के रूप में सम्भावित है। कुछ सब्जियों एवं आलू की फसलों में 5–6 क्यारियों के समुह के टुकड़े इस प्रकार बनाते हैं कि जल की धार अन्दर ही अन्दर सभी नालियों तक पहुँच जाये। जब एक समुह के लिये पर्याप्त जल प्रवेश कर जाय तो जल की धारा को दूसर समुह की ओर मोड़ देते हैं।

कूँड विधि (Furrow Irrigation System) के कुछ और भी वैज्ञानिक प्रयोग सफल हुये हैं। इसके सबसे सफल है, एक कूँड (Furrow) छोड़ कर एक को सिंचाई करना। इसमें सिंचाई तो एक कूँड छोड़कर एक में की जाती है, पर क्षैतिज बहाव के कारण प्रत्येक कूंड की सिंचाई हो जाती है तथा 25 से 35% सिंचाई जल की बचत भी हो जाती है। वैसे भी यदि किसी पौधे की 40% जड़ों को जल मिल जाय तो वह पौधे के प्रत्येक अंग तक वितरित हो जायेगा।

कूँड सिंचाई विधि में जल की बचत होती है, पोषक तत्वों की लीचिंग (Leaching) नहीं होती और सिंचाई के बाद उपरी परत पर कड़ी परत (Hard Crust formation) नहीं होता, जिसे अन्य विधियों में सिंचाई के बाद निकाई गुड़ाई कर तोड़ना पड़ता है।

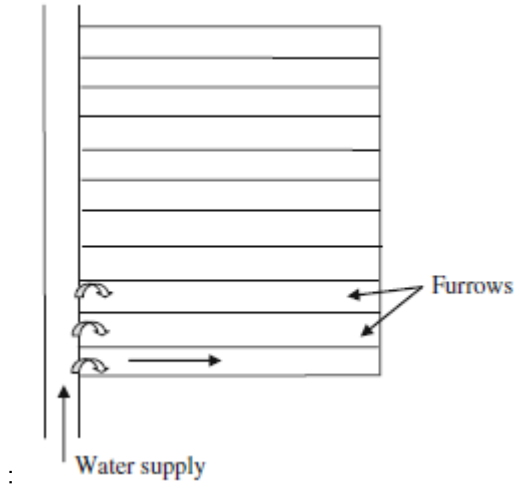

चित्र : कूंड विधि

6. स्प्रींकलर सिंचाई (Sprinkler Irrigation) – यह सिंचाई का एक आधुनिक तरीका है। इसमें छिद्र युक्त धातु की नालियों से जल प्रवाहित कराया जाता है। ये धातु की नालियों फसल के उपर से वर्षा की तरह फुहारें छोड़ती है। जब आवश्यकता भर जल पौधों को प्राप्त हो जाता है तो Sprinkler Set खोलकर खेत के दूसरे भाग में खड़ा कर वहाँ सिंचाई शुरू कर देते हैं। यह Sprinkler सेट Transportable होता है। इस विधि में जल की जरा भी बरबादी नहीं होती और उपलब्ध जल से अधिक से अधिक क्षेत्र में सिंचाई हो जाती है। अपने प्रारम्भिक भारी खर्च एवं समय–समय पर नलिकाओं (Pipes) के replacement की आवश्यकता के कारण यह विधि बहुत popular लोकप्रिय नहीं हो पाई है। परन्तु जो यह खर्च वहन कर सकते हैं और उचित रख–रखाव में तत्पर रह सकते हैं, उनके लिये यह अत्यन्त कारगर विधि है।

चित्र : स्प्रींकलर सिंचाई

7. ड्रीप सिंचाई (Drip Irrigation) – यह सिंचाई विधि विज्ञान की यांत्रिक विधियों का नमूना है। इसमें पानी का Sprinkler विधि से भी अधिक बेहतर उपयोग होता है ताकि उस पौधे तक बूंदों में पहुँचता है, इसलिये इसे Drip

Irrigation कहते हैं। स्प्रीकलर सिंचाई और ड्रीप सिंचाई में एक और भारी अन्तर होता है। स्प्रींकलर सिंचाई में सारा सेट हटा–हटा कर सिंचाई की जाती है, जबकि ड्रीप सिंचाई सेट एक ही जगह स्थापित (Fixed) कर दिया जाता है। सामान्यतः विधि को औद्यानिक फल, सब्जी या ओषधीय फसल के लिये प्रयोग में लाया जाता है। इसमें भी पानी धातु नालियाँ द्वारा पहुँचता है। जहाँ–जहाँ पौधों की जड़ें होती हैं, वहाँ–वहाँ नालियों में छिद्र होते हैं, जिनसे पानी की बूँदें टपकती है। आवश्यकतानुसार पानी का बहाव, खोला या बन्द किया जा सकता है। यह विधि केवल अत्यन्त उच्च मूल्य वाले उत्पादों में ही प्रयोग में लाया जाता है।

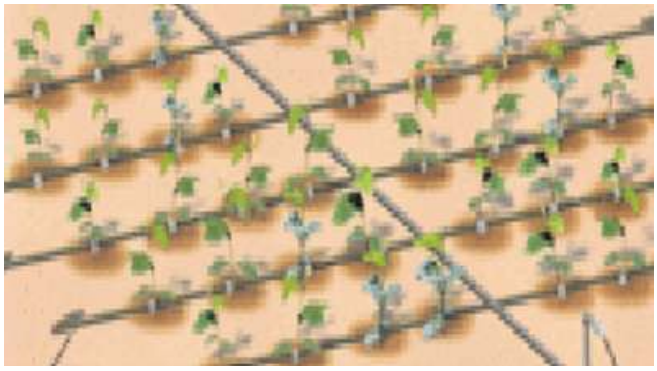

चित्र : ड्रीप सिंचाई

4.3.2 भूमिगत सिंचाई विधियाँ

यह अत्यन्त ही आधुनिक और भारी लागत वाली विधि है। इसमें भूमि की निचली परतों में धातु की नलियों द्वारा जल प्रवाहित होता है। जो खेत के वांछित हिस्से को सिंचाई जल नीचे ही नीचे उपलब्ध कराता है। आवश्यकतानुसार सिंचाई जल प्राप्त होते ही नलों में प्रवाह बन्द कर दिया जाता है। इस विधि का प्रयोग अभी अनुसंधान क्षेत्रों तक ही सीमित है। इसका सबसे बड़ा फायदा है कि जमीन का वह हिस्सा जिससे सिंचाई की नालियों (बड़ी या छोटी) दौड़ती थीं, वह भी खेती में प्रयुक्त हो जाता है। स्प्रींकलर सिंचाई में भी यह लाभ प्राप्त है।

4.4 जल निकास का महत्व एवं उनकी विधिया (Drainage)

जल प्रबन्धन में जितना महत्व सिंचाई का है, उससे किसी भी अवस्था में जल–निकास का महत्व कम नहीं है। सिंचाई के अभाव में हो सकता है कि उपज का कोई एक प्रतिशत कम हो जाय, पर जल–निकास के अभाव में पूरी फसल देखते–देखते नष्ट हो जा सकती है। कुछ फसलें जैसे मक्का, अरहर, आलू, गेहूँ इत्यादि जल जमाव से अत्यधिक प्रभावित होते हैं। सब्जियों पर भी इसका, काफी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। रब्बी या जायद (गरमा) मौसमों की अपेक्षा खरीफ मौसम में जल निकास का अत्यधिक महत्व है। इसीलिये खरीफ फसलों में खेत की तैयारी के समानान्तर जल'–निकास का भी प्रबन्ध कर लिया जाना आवश्यक माना जाता है।

जल–निकास निम्नलिखित स्थितियों या कार्यों को सम्पादित करता हैः–

(i) जड़ क्षेत्र की मिट्टियों के दीर्घ रंध्रों (Macro Pores) से जल को निष्काषित कर उनमें वायू स्थापित कर कोशकीय श्वसन व्यवस्थित करना।

(ii) पौधों को जड़ों में विकास की गति तीव्र कर अधिकाधिक पोषक तत्वों का ग्रहण।

(iii) सिंचाई से मिट्टी की उपरी परत बैठ जाने से वायूमंडल एवं मिट्टी के आन्तरिक वातावरण के बीच वायू संचरण बाधित हो जाता है। जल निकास निकाई–गुड़ाई का मार्ग प्रशस्त कर इस स्थिति से मुक्ति दिलाता है।

(iv) जब वायूमंडल एवं मिट्टी के बीच की वायू संचार बाधित होता है तो अनेकों अनवांछित गैसें जैसे, कार्बन मोनो आक्साइड, सल्फर डाय आक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड इत्यादि जड़ क्षेत्र में जमा होने लगती है, जो पौधों को क्षति पहुंचाती है। जल–निकास इस परिस्थिति को दूर करता है।

(v) जल–जमाव से मिट्टी में आक्सीजन की कमी के कारण Reduced zone बनता है, जो नेत्रजन की गैसीय क्षति का कारण बनता है।

(vi) रिसता जल अपने साथ मिट्टी के लवणों को घुला कर नीचली सतहों में पहुँचा देता है। फलस्वरूप खेती योग्य उपरी परतें असर बना नहीं पाती। जल जमाव मिट्टी के पी.एच (Ph) को बढ़ा कर असर क्षारीय बनाता है। उचित जल निकास इस समस्या का निवारक है।

(vii) जड़ों में aerobic respiration की जगह Unaerobic respiration होने लगता है जिसमें जड़ों में विषाक्त वस्तुयें (Substance) जमा होने लगती है। इथेनॉल का उत्पादन बढ़ने लगता है। फलस्वरूप alcohol dehydrogenase की सक्रियता बढ़ जाती है। जल–निकास इन परिस्थितियों की उत्पत्ति को निष्क्रिय करता है।

जिन क्षेत्रों में सिंचाई–जल की अत्यधिक उपलब्धता होती है, जैसे की नहरी या भारी वर्षा वाले क्षेत्र वहाँ मिट्टी की उपरी परतों में से लवणों का नियमित स्थानान्तरण बाधित होने के कारण भूमि धीरे–धीरे असर बनने लगती है। ऐसे क्षेत्रों में खेतों के चारों ओर गहरी नालियों का होना आवश्यक होता है। जब कम वर्षा या बरसात के बाद के मौसमों में लवण बहा कर खेत से दूर ले जाती है।

मोटा मोटी तौर पर जल निकास की दो विधियाँ होती हैं

(क) सतही जल निकास (Surface Drainage), एवं

(ख) अन्तः जल निकास (Sub-Surface Drainage)

(क) सतही जल निकास :– यह सबसे आसान तरीका है। फसल बोआई के साथ ही जल निकास की व्यवस्था सुनिश्चित कर ली जाती है। समय–समय पर, विशेषतः वर्षा के बाद सिंचाई नालियों को साफ करते रहना होता है। बहुधा सिंचाई के लिये प्रयुक्त नालियों अत्यधिक वर्षा की स्थिति में जल–निकास का कार्य करती है। बस ध्यान रखना होता है कि इन सिंचाई की नालियों में ही जल फँसने न लगे।

बड़े खेतों में थोड़ी दूर दूर पर गहरी चौड़ी नालियाँ बनाते हैं। खेतों के अन्य हिस्सों से छिछली नालियों या फसल की पंक्तियों के बीच के नाली सरीखे स्थान आवश्यकता से अधिक जल को बहा कर मुख्य नाली तक ले जाते हैं, जो तेजी से ढाल की ओर से, जल का निष्कासन कर देते हैं।

सतही जल निकास की बस एक ही कमी है कि इसमें खेत का कुछ हिस्सों में फसल नहीं लग पाती, पर वह सम्भवतः ज्यादा आवश्यक भूमिका निभा रही होती हैं।

चित्र : सतही जल निकास

(ख) अन्तः जल निकास – यह एक आधुनिक एवं अत्यन्त खर्चीली विधि है। इसमें खेत में नीचे पक्की नालियाँ बनी होती हैं, जो अतिरिक्त जल को निकाल कर बाहर ले जाती है। आजकल यह प्रणाली बड़े–बड़े खेल के मैदानों में प्रयुक्त होता है, जहाँ कितनी भी वर्षा हो, जल को जमा नहीं होने दिया जाता। खेती जैसी कम आय वाले उद्योग में इस विधि की भूमिका भी अभी कम ही है।

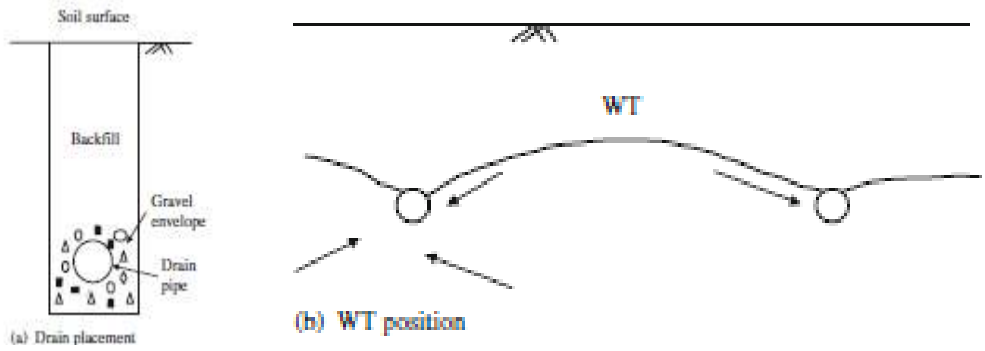

चित्र : अन्तः जल निकास

4.5 समस्या ग्रस्त मिट्टियाँ एवं उनका प्रबंधन

भारत एक कृषि प्रधान देश है एवं लगभग 78 प्रतिशत जनसंख्या का जीवन निर्वाह कृषि पर आधारित है। अतः भारत को समृद्धशाली बनाने के लिए कृषि उत्पाद को सुदृढ़ करना अति आवश्यक है। बिहार राज्य का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 93.60 लाख हेक्टेयर है एवं क्षेत्रफल की दृष्टि से इसका नवॉ स्थान है। यहाँ की मिट्टी बहुत उपजाऊ है एवं अगर कुछ सुनिश्चित प्रबंधन कर दिया जाये तो यह भारत के कुल फसल उत्पादन में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है।

पौधों के वृद्धि एवं विकास को विभिन्न कारक प्रभावित करते हैं इनमें से मृदा कारक का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है, क्योकि यह पौधों को सहारा देने के साथ–साथ इनकी वृद्धि एवं विकास के लिए सभी 17 आवश्यक पोषक तत्व भी उपलब्ध कराता है। अतः मृदा का स्वस्थ एवं उपजाऊ होना अति आवश्यक है। मृदा एक निर्जीव पिण्ड नही होती है। मृदा में जीवन होता है। मृदा के सजीव जगत में पौधों की जड़े, केचुएं, सूक्ष्मजीवाणु इत्यादि होते हैं। प्रति ग्राम मृदा में सूक्ष्मजीवों की संख्या अरबों में होती है। सूक्ष्मजीवों की उपस्थिती का सीधा संबंध मृदा स्वास्थ्य एवं उसमें उपस्थित जीवांश पर निर्भर करता है, क्योंकि सूक्ष्मजीवों का जीवन कार्बनिक पदार्थो पर निर्भर करता है। अतः किसान भाइयों को किसी भी तरह जैसे कि हरी खाद, कम्पोस्ट, जैविक खाद, वर्मीकम्पोस्ट, कार्बनिक अवशेष इत्यादि डालकर मृदा में जीवांश स्तर को बनाये रखना चाहिए।

रासायनिक उर्वरकों के अंधाधुंध प्रयोग के बावजूद भी भरपूर एवं उच्च गुणवत्ता वाला उत्पाद प्राप्त नहीं हो पा रहा है। इसके कई कारण हो सकते है जैसे कि असंतुलित उर्वरकों का प्रयोग एवं जैविक खादों का प्रयोग न करना इत्यादि। किसान भाइयों को इस बात पर अवश्य ही ध्यान देना होगा कि जो भी रासायनिक खाद जैसे कि यूरिया, डीएपी इत्यादि खेत में डाला जाता है उसे पौधे उसी रुप में अवशोषित नहीं करते बल्कि इनका सूक्ष्मजीवों द्वारा उपलब्ध आयनों में परिवर्तन होता है और पौधे इन्हें ही अवशोषित करते है। जैसे कि सूक्ष्मजीवाणु की उपस्थिती में यूरिया, नाइट्रेट में, डी.ए.पी., फास्फेट में इत्यादि पादप अवशोषण रुप में परिवर्तित हो जाते है एवं पौधे इन्हे आसानी से अपनी वृद्धि एवं विकास के लिए प्रयोग में लाते हैं। इस प्रकार मृदा स्वास्थ्य को बनाये रखते हुए भरपूर एवं उच्चगुणवत्ता वाले फसलोत्तपादन के लिए एक सुनियोजित तरीके से मृदा प्रबंधन बहुत ही जरुरी है।

कुछ मृदायें प्राकृतिक रुप से अधिक उपजाऊ होती हैं एवं किसान भाइयों द्वारा की गयी थोड़े से परिश्रम में ही अच्छी फसल पैदावार हो जाती है जबकि कुछ मृदायें किसी प्रकार की समस्या जैसे कि लवणता, उसरता, अम्लीयता इत्यादि के कारण अनुत्पादक होती हैं।

बिहार की समस्याग्रस्त मिट्टियों को कई भाग में बाँटा गया है

बिहार की मिट्टियों में विभिन्न समस्याएँ

मिट्टी के प्रकार	क्षेत्रफल (लाख हेक्टेयर)
अम्लीय मिट्टी (Acid soil)	0.02
क्षारीय मिट्टी (Alkaline soil)	3.20
ताल क्षेत्र (Tal land)	1.00
दियारा क्षेत्र (Diara land)	9.30

जलमग्न क्षेत्र (Water logged soil)	4.00
चौर क्षेत्र (Chour land)	1.00
चुनायुक्त मिट्टी (Calcareous soil)	1.00
क्षरण प्रभावित क्षेत्र (Degraded soil)	0.20
अधिक घनत्ववाली मिट्टियाँ (Heavy clay)	1.00
कुल क्षेत्रफल	20.72

अतः यहाँ पर साधारण एवं समस्याग्रस्त मृदाओं का किस तरह प्रबंधन करना चाहिए, वर्णित किया गया है।

4.5.1 लवणीय एवं क्षारीय मृदायें (SALINE AND ALKALI SOILS)

नामकरण (NOMENCLAURE) – उत्तरी भारत में क्षरीय मृदाओं को ऊसर, कललर एवं बंजर नामों से जाना जाता है जब कि दक्षिण भारत में इन्हें चौपान, क्षार, चाँदू आदि नामों से जाना जाता है। पंजाब में लवणीय मृदाओं को थूर व क्षरीय मृदाओं को रॉकर कहते है।

लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं का क्षेत्रफल एवं वितरण–

भारत में लगभग 71 लाख हेक्टेयर भूमि लवणीय एंव क्षारीय है। सर्वाधिक क्षेत्रफल उत्तरी भारत में हैं केवल उत्तर प्रदेष में 13 लाख हेक्टेयर भूमि लवणीय है। कुल प्रभावित क्षेत्रफल में 28 लाख हेक्टेयर भूमि विषुद्व क्षारीय मृदायें हैं। केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (भारत) द्वारा लवण प्रभावित क्षेत्रों को निम्न क्षेत्रों में बाँटा गया है।

4.5.1.1 लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं का वर्गीकरण – (CLASSIFICATION OF SALINE & ALKALI SOILS) – यू. एस. मृदा लवणता प्रयोगषाला ने लवणीय एवं क्षारीय मृदाओ का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया है।

1. **लवणीय मृदायें (SALINE SOILS)-** निम्नलिखित गुण रखने वाली मृदायें लवणीय मृदायें कहलाती है।
   1. मृदा पी एच – 8.5 से कम
   2. मृदा संतृप्त निष्कर्ष की वि चा (EC) (25^{o} से. पर) – 4.0 डे सा मी$^{-1}$
   3. विनिमय सोडियम प्रतिषत (ESP) – 15 से कम

अमेरिकन वैज्ञानिक डिलगार्ड ने इन मृदाओं को श्वेत क्षारीय मृदा तथा रूसी वैज्ञानिक गैडरॉयज ने सोलनचक नाम दिये।

इनमें धुलनषील लवणों की मात्रा अधिक होती है। धुलनषील लवणों में NaCl वा Na_2SO_4 की प्रधानता होती है। Ca व Mg के Cl, SO_4^{2-} व HCO_3^- भी प्रर्याप्त मात्रा मे होते है। कभी–कभी NO_3^- भी मिलता है।

2. **क्षारीय मृदायें (ALKALI SOILS) .** निम्नलिखित गुण वाली मृदायें क्षारीय मृदायें कहलाती है।
   1 .मृदा पी एच – 8.5 से अधिक
   2. मृदा संतृप्त निष्कर्ष की वि चा (25^{o} से. पर) – 4 डे सी मी$^{-1}$ से कम
   3. विनिमय सोडियम प्रतिषत – 15 से अधिक

डिलगार्ड ने इसका नाम काली क्षारीय मृदा तथा गैडरॉयज ने सोलोनेज रखा। इनमें मृदा संकीर्ण Na से संतृप्त रहता है तथा Ca, mg, K आदि धनायन भी संकीर्ण पर अधिषोषित रहते है। इनमें CO_3^{2-} की प्रधानता होती है। फिर भी Cl^-, SO_4^{2-}, HCO_3^- भी पर्याप्त मात्रा में पाये जाते है।

3. **लवणीय–क्षारीय मृदाये (SALINE – ALKALI SOILS)-** निम्नलिखित गुण वाली मृदाग्रें लवणीय क्षारीय मृदाये कहलाती है।
   1 मदा पी एच – 8.5 से कम
   2. मृदा संतृप्त निष्कर्ष की वि चा (25^{o} से. पर) – 4 डे सी मी$^{-1}$
   3. विनिमय सोडियम प्रतिषत – 15 से अधिक

इनमे विलये लवणों के साथ–साथ अविलेष कार्बोनेट्स भी पर्याप्त

मात्रा में उपस्थित रहते है।

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान करनाल (भारत) के वैज्ञानिकों के नवीनतम् वर्गीकरण के अनुसार क्षारीय मृदाओं को केवल 2 वर्गो में विभक्त किया गया है– लवणीय मृदायें एवं क्षारीय मृदायें।

4.5.1.2 लवणीय एंव क्षारीय मृदा बनने के कारण

प्रारम्भ में इन मृदाओं का निर्माण षुष्क एवं अर्ध– षुष्क जलवायु, पैतृत पदार्थ तथा समुद्र के प्रभाव से हुआ है। अन्य कारक भी इन मृदाओं के निर्माण में सहयोग करते है। कुछ प्रमुख कारक निम्न है।

1. **षुष्क जलवायु –** कम वर्षा व उच्च ताप के कारण जल केषिका उन्नयन द्वारा मृदा सतह पर पहुँचकर वाष्पन द्वार वायुमण्डल में विसरित हो जाता है और विलेय लवण सतह पर एकत्रित हो जाता है जिसे मृदा लवणीय हो जाती है।
2. **समुद्र का प्रभाव –** समुद्र एवं झील के पास की मृदाओं से वाष्पन द्वारा जल का ह्रास हो जाता है और विलेय लवण सतह पर एकत्रित हो जाता है।
3. **लवणीय जल से सिंचाई –** लवण युक्त जल द्वारा सिंचाई करने पर जल पहले मृदा में निचले सतह मे चला जाता है जो बाद में केषिका उन्नयन द्वारा विलेय लवणों के साथ सहत पर पहुँचता है। जल वाष्प के रूप में उड़ जाता है और पौधों द्वारा उपयोग कर लिया जाता है तथा लवण अवषेष के रूप में सतह पर जम जाते है। सिंचाई जल में सोडियम की उपस्थिति से लवणीय–क्षार मृदाओं का विकास होता है।
4. **उच्च जल स्तर –** जल स्तर की अधिक ऊँचाई होने पर अधिक जल केषिका प्रभाव से मृदा सतह पर आकर वाष्पित हो जाता है और लवण सतह पर एकत्रित हो जाते है। मृदा सतह पर लवणों का संचयन केषिका गति भूजल में लवणों की मात्रा एंव वाष्पीकरण की गति पर निर्भर करता है।
5. **अधो–मृदा की अभेद्यता –** अधो मृदा में कड़ी परत होने के कारण जल निचली सताहें में नहीं रिस पाता है जिससे लवणों का निक्षालन नही होता और वे सतह पर एकत्रित हो जाते है।
6. **दूषित जल निकास –** निचले स्थानो पर एकत्रित जल अन्यत्र नही निकल पाता है जो सूखने पर लवणो को छोड़ देता है। यह क्रम अनवरत चलते रहने के कारण लवणों की पर्याप्त मात्रा मृदा में एकत्रित होकर मृदा को लवणीय बना देता है।
7. **पैतृक पदार्थो की प्रकृति –** भास्मिक एवं क्षारीय पैतृक पदार्थों से विकसित होने वाली मृदायें मूलतः क्षारीय प्रकृति की होती है। विकास की अनुकूल परिस्थितियों में भी इनका लवणीय स्तर बना रहता है। षुष्क एवं अर्ध–षुष्क क्षेत्रों में ऐसी मृदाओं में लवणों की मात्रा और बढ़ जाती है।
8. **ज्वालामुखी का प्रभाव–** Na युक्त उर्वरकों की भास्मिक प्रकृति होती है जिसके निरन्तर उपयोग से मृदा संकीर्ण पर Na की मात्रा बढ़ जाती है जिससे मृदा क्षारीय हो जाती है। ऐसी मृदाओं में सोडियम नाइट्रेट का प्रतिबंधित उपयोग करना चाहिये।
10. **हलके तल के कठोर परत बनने के कारण –** निरन्तर एक ही दिषा में वा गहरी जुताई करने से मृदा में एक अभेद्य कड़ी परत बन जाती है जिससे लवण युक्त जल नीचे न रिसकर सदैव ऊपरी सतह में भरा रहता है। जल के सूखने पर अवषिष्ट लवण मृदा को लवणीय बना देता है। इनके अतिरिक जीव–रासायनिक क्रियायें, आयन विनिमय, कार्बनिक पदार्थ का विच्छेदन आदि भी ऊसर मृदाओं के निर्माण में योग देते है।

4.5.1.3 लवणीय एंव क्षारीय मृदाओं का सुधार (RECLAMATION)

इन मृदाओं को सुधारने के लिए निम्न प्रक्रिया अपनानी चाहिये–

1. लवणों का उन्मूलन
2. लवणीय व क्षारीय मृदाओं का नियन्त्रण
3. हानिकारक Na लवणों को कम हानिकारक लवणों में परिवर्तित करना
4. जैव–रासायनिक क्रियाओं का प्रसार करना

केन्द्रीय लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (भारत) एवं अन्य अनुसंधान केन्द्रों पर किये गये प्रयोगों के आधार पर निम्नलिखित समन्वित कार्यक्रम ऊसर मृदाओं के सुधार हेतु प्रस्तुत किया गया है।

(अ) भौतिक सुधार

1. भौतिक एवं यांत्रिक क्रियायें – इन क्रियाओं द्वारा मृदा में उपस्थित हानिकारक लवणों का उन्मूलन किया जाता है, साथ ही साथ क्षारीयता के विस्तार को भी नियन्त्रित किया जा सकता है।

2. लवणों को खुरचकर – मृदा के ऊपरी सतह पर एकत्रित लवणों की भुरभूरी सफेद परत को खुरचकर एवं एकत्रित करके प्रभावित क्षेत्र से बाहर कर दिया जाता है। यह कार्य कम उपयोगी एवं अधिक खर्चीला है।

3. विक्षालन – लवणीय मृदा में जल की अधिक मात्रा का प्रयोग करके विलय लवणों का निक्षालन कर दिया जाता है निक्षालन से हानिकारक लवण जड़ो की पहुँच से नीचे चले जाते है। इस क्रिया के लिये सम्बन्धित क्षेत्र का जल स्तर नीचा होना चाहिये तथा अच्छी गुणवता का सिंचाई जल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होना चाहिये। साथ ही साथ मृदा के नीचे कठोर परत भी नही होना चाहिये। इन क्रिया से लाभदायक पोषक तत्व भी निचले स्तर में चले जाते है।

4. जल निकास – मृदा में विलेय लवणों को जल के साथ सतहीय अथवा भूमिगत जल निकास द्वारा प्रभावित क्षेत्र से बाहर कर दिया जाता है। उच्च जल स्तर व मृदा में कठोर परत होने पर यह विधि अत्यन्त प्रभावकारी होती है। भूमिगत जल निकास के लिये रवर पाईप का प्रयोग होता है।

5. लवणों का बहना – प्रभावित क्षेत्र में जल की अधिक मात्रा भरकर उसे खेत से बाहर निकाल दिया जाता है जिससे ऊपरी सतह में लवणों की कमी हो जाती है।

6. खाई खोदकर – खेत में खाइयाँ खोदकर एक खाई की मिट्टी दूसरी खाई में इस प्रकार डालते है कि ऊपर की मिट्टी नीचे और नीचे की मिट्टी ऊपरी सतह पर आ जाती है। यद्यपि यह खर्चीली विधि है लेकिन एक लम्बी अवधि तक लवण नीचे से ऊपरी सतह पर नही आ पाते और फसलों को सरलता पूर्वक उगाया जा सकता है।

7. वाष्पीकरण का नियन्त्रण – मृदा सतह पर मल्च अथवा धास–फूस डालकर जल वाष्पन को अवरूद्व कर दिया जाता है। जिससे केषिका उन्नयन नही होता जिससे निचली सतह से लवण ऊपरी सतह पर नही आ पाते है।

(ब) रासायनिक सुधार

इस विधि द्वारा Na लवणों व मृदा संकीर्ण को कम हानिकारक लवणों एवं Ca संकीर्ण में परिवर्तित किया जाता है। मुख्य सुंधारको की क्षारीय मृदाओं में रासायनिक क्रियायें निम्न रूप में होती है।

1. जिप्सम – क्षारीय मृदाओं के सुधार में जिप्सम का सर्वाधित प्रयोग किया जाता है। जिप्सम 2 प्रकार से अभिक्रिया करता है।

(i) जिप्सम मृदा संकीर्ण से Na को विस्थापित करके Ca मृदा में परिवर्तित कर देता है।

(ii) जिप्सम Na_2CO_3 से क्रिया करके मृदा क्षारीयता दूर करता है।

$$Na_2CO_3 + CaSO_4 \longrightarrow CaCO_3 + Na_2SO_4 \text{ (निक्षालन)}$$

जिप्सम के स्थान पर उद्योगों के उप–उत्पाद फॉस्फोजिप्सम का प्रयोग लाभदायक सिद्व हुआ है।

2. गंधक (सल्फर) – गंधक का एक परमाणु मृदा–संकीर्ण से तीन आयन्स को विस्थापित कर देता है। मृदा में गंधक मिलाने पर निम्न अभिक्रियायें होती है।

$$2S + 3O_2 \longrightarrow 2SO_3$$

$$SO_3 + H_2O \longrightarrow H_2SO_4 \text{ (गंधक अम्ल)}$$

3. गंधक अम्ल (SULPHURIC ACID: H_2SO_4) - मृदा में H_2SO_4 की क्रिया तत्वीय S से उत्पन्न H_2SO_4 की भाँति होती है। अधिक महँगा व दाहक होने के कारण इसका प्रयोग वर्जित है।

4. फेरस सल्फेट– ऊसर सुधार में फेरस सल्फेट का प्रयोग महत्वपूर्ण है जिसकी मृदा में निम्न क्रियायें होती है।

5. चूना पत्थर – 7.6 से कम पी एच वाली मृदाओं को सुधारने के लिये पिसे हुये चूना पत्थर का उपयोग किया जाता है क्योकि अधिक पी एच पर चूना अविलेय हो जाता है। चूना में उपस्थित Ca मृदा संकीर्ण पर उपस्थित Na को निम्न प्रकार विस्थापित करता है।

6. चूना गंधक – क्षारीय मृदा में यह निम्न प्रकार क्रिया करता है।

7. पाइराइट – यह एक उत्तम, सस्ता, एवं सुलभ रासायनिक सुधारक है। मृदा में पारइराइट जैव रासायनिक परिवर्तनों द्वारा आक्सीकृत होकर H_2SO_4 व अन्य अम्लीय पदार्थो का निर्माण करता है जो मृदा - Na से क्रिया करके उसे Ca - मृदा में परिवर्तित कर देते है। मृदा में पाइराइट के परिवर्तन की श्रृंखलाबद्व रासायनिक क्रिया नीचे दी गयी है।

$$FeS_4 + 2H_2O + 7O_2 \longrightarrow 2FeSO_4 + 2H_2SO_4$$

$$4FeSO_4 + O_2 + 2H_2SO_4 \longrightarrow 2Fe_2(SO_4)_3 + 2H_2O$$

$$Fe_2(SO_4)_3 + FeS_2 \longrightarrow 3FeSO_4 + 2S$$

$$2S + 3O_2 + 2H_2O \longrightarrow 2H_2SO_4$$

उपरोक्त परिवर्तन के समय बनने वाले अम्लीय पदार्थ $FeSO_4$ आदि भी मृदा क्षारीयता को दूर करते है। ऊसर मृदा में पाइराइट के उपयोग से अतिरिक्त लाभ यह होता है कि इससे पौधों को एक पोषक तत्व भी प्राप्त होते है जिनकी इन मृदाओं में प्रायः कमी होती है।

8. फॉस्फोजिप्सम – फॉस्फोरिक अम्ल निर्मित करने वाले कारखानों से अधिक मात्रा में जिप्सम उप–उत्पाद के रूप में मिलता है जिसे फॉस्फोजिप्सम कहते है। इसमे लगभग 90% जिप्सम तथा 1.2% फ्लोरीन होता है। चूँकि फ्लोरीन पौधों के लिये अविषालु होता है, अतः 1% कम फ्लोरीन युक्त फॉस्फोजिप्स का प्रयोग क्षारीय मृदाओं को सुधारने के लिये किया जाता है।

जिप्सम की मात्रा का निर्धारण (GYPSUM REQUIREMENT)

जिप्सम की मात्रा का निर्धारण सामान्यतः मृदा पी एच व कणाकार के आधार पर किया जाता है। जिप्सम तुल्यांको की सहायता से अन्य सुधारकों की मात्रा भी ज्ञात की जा सकती है जो निम्न तालिकाओं से स्पष्ट है।

सुधारक	एक टन जिप्सम के तुल्य सुधारकों की टनों में मात्रा
जिप्सम ($CaSO_4 .2H_2O$)	1.00
कैल्सियम क्लोराइड ($CaCl_2 .2H_2O$)	0.85
गंधक (S)	0.19
सल्फ्यूरिक अम्ल (गंधक अम्ल H_2SO_4)	0.57
फेरस सल्फेट ($FeSO_4. 7H_2O$)	1.62
ऐलुमिनीयम सल्फेट [$Al_2(SO_4)_3.18H_2O$]	1.29
चूना सल्फर (CaS_5) 24%S	0.77
आयरन पाइराइट (FeS_2)	0.63
चूना पत्थर ($CaCO_3$)	0.58

तालिका–जिप्सम की मात्रा (टन हे$^{-1}$) [GYPSUM REQUIREMENT (Ton ha^{-1})]

मृदा पी एच	मृदा कणाकार		
	हल्की (LIGHT)	मध्यम (MEDIUM)	भारी (HEAVY)
9.2	1.7	2.5	3.4
9.4	3.4	5.0	6.8
9.6	5.0	7.5	10.0
9.8	6.8	10.0	14.6
10.0	8.5	12.5	15.0
10.2	10.0	15.0	15.0
झ10.2	10.0	15.0	15.0

पाइराइट की मात्रा (टन हे$^{-1}$) = जिप्सम की मात्रा × 0.63

नोट : – प्रमुख सुधारकों के रूप मे जिप्सम व पाइराइट का ही प्रयोग किया जाता है। अन्य रासायनिक सुधारकों का प्रयोग व्यवहारिक नहीं है।

4.5.1.4 फसलों की लवणता के प्रति सहिष्णुता

सारणी : फसलों की लवण सहिष्णुता

सहिष्णु	मध्यम सहिष्णु	असहिष्णु
अनाज		
जौ, चुकन्दर, कपास, धान, बाजरा, राई, सरसों, तोरिया इत्यादि।	गेहूँ, गन्ना, मूंगपफली, मक्का, सूरजमुखी, ग्वार, तम्बाकु, सोयाबीन, जई इत्यादि	तिल, बाकला, लोबिया, मूंग, चना, अरहर, उर्द इत्यादि
फल		
खजूर इत्यादि	अंजीर, अनार, अंगूर, अमरुद, बेर इत्यादि	संतरा, सेव, आडू इत्यादि
शाक–सब्जी		
चौलाई, पालक, शलजम इत्यादि।	टमाटर, बैगन, खीरा, ककड़ी, फूलगोभी, पातगोभी, गाठगोभी, आलू, गाजर, प्याज, मटर, शकरकंद, करेला, लौकी, भिण्डी, मिर्च इत्यादि	मूली, लोबिया, सेम
चारा		
दूबघास, पैराघास, सूडानघास, रिजका इत्यादि।	ढैंचा, अंजन घास, करनाल इत्यादि	बरसीम

4.5.2 अम्लीय मृदायें (ACID SOILS)

परिभाषा – वह मृदायें, जिनके मिसेल (MICELLE) पर अधिषोषित H^+ आयन्स का सक्रियण (ACTIVITY) भस्मों (BASES) की अपेक्षा अधिक होता है तथा पी–एच 7.0 से कम होता है, अम्लीय मृदायें कहलाती हैं।

अम्लीय मृदायें नम जलवायु में विकसित होती हैं। अधिक वर्षा के कारण मृदा संकीर्ण पर अधिषोषित भस्म विलेय होकर निक्षालित हो जोते है और मृदा अम्लीय हो जाती है। जीवांष पदार्थ की अधिकता भी मृदाओं कें अम्लीय बनने में सहयोग देता है।

भारत में अम्लीय मृदाओं का क्षेत्रफल क्षारीय मृदाओं से अधिक है। मोटे अनुमान के अनुसार 12 मिलियन (120 लाख) हेक्टेयर भूमि अम्ल प्रभावित है परन्तु उत्तम संरचना के कारण इनमें बहुत सी मृदाओं पर उत्पादन होता है। भारत में सर्वाधिक अम्लीय मृदायें पूर्वोत्तर भागों में वा केरल में पायी जाती है। केरल की कुछ मृदाओं का पी–एच 4 से कम होता है। अम्लीय मृदायें मृख्य रूप से आसाम, केरल, त्रिपुरा, मणीपुर, पष्चिमी बंगाल, झा**रख**ण्ड वा तराई क्षेत्र कर्नाटक के कुर्ग वा कन्मरा क्षेत्र, महाराष्ट्र के कोलाना, रत्नागिरी, चाँदा व भण्डारा जिले मद्रास का सलेम जिला, पंजाब के होषियारपुर पटियाला जिले तथा जम्मू व कष्मीर के पहाड़ी क्षेत्रों में पायी जाती है।

4.5.2.1 अम्लीय मृदा बनने के कारण (CAUSES OF FORMATION OF ACID SOILS)-

1. अम्लीय पैतृत पदार्थ (ACIDIC PARENTMATERIAL)- कवाट्र्ज, ग्रेनाइट एवं रायेलाइट चट्टानों से बनी मृदायें अम्लीय होती है क्यों कि इनमें उपस्थित Si के अपघटन से आर्थेसिकलिक व ट्राइसिलिक व ट्राइसिलिक अम्ल बनते ळें

2. अधिक वर्षा द्वारा भस्मों का ह्रास (LEACHING OF BASES DUE OT HEAVY RAIN) अधिक वर्ष वाले क्षेत्रों में मृदा संकीर्ण (COMPLEX) पर अधिशोषित विलेय भस्म आयन Ca^{2+}, Mg^{2+}, Na^{+}, K आदि जल के साथ घुलकर मृदा के निचले संस्तरों में चले जाते है जिससे मृदा संकीर्ण पर H^{+} आयन अधिक हो जाता है। फसलों द्वारा अपेक्षाकृत अधिक भस्मों के अवशोषण व जाड़ो द्वारा H^{+} के अवमुक्त होने से भी मृदा अम्लीयता में वृद्वि होती है।

3. कार्बनिक पदार्थ की मात्रा (ORGANIC MATTER) कार्बनिक पदार्थ के अपघटन से कार्बोनिक एवं अन्य कार्वनिक अम्ल बनते है। अम्लों के आयनन (IONIZATION) द्वारा H^{+} आयन उत्पन्न होकर मृदा संकीर्ण पर अधिशोषित धनायनों Ca^{2+}, Mg^{2+}, K, Na^{+} आदि को विस्थापित करके वहाँ अधिशोषित हो जाते हैं तथा भस्त निक्षालन (LEACHING) द्वारा नष्ट हो जाते हैं जिससे मृदा अम्लीय हो जाती ळें

4. अम्लीय उर्वराके का उपयोग (USE OF ACIDIC FERTILIZERS) अधिकांश रासानिक उर्वरक मृदा में अम्लयता उत्पन्न करते हैं। अमोनियम सल्फेट, अमोनियम नाइट्रेट, अमोनियम क्लोराइड आदि मृदा में डिलने पर मृदा संकीर्ण से भास्मिक आयनों को विस्थापित करके अम्लीयता उत्पन्न करते ळें

$$\text{मिसेल } Ca^{2+} + (NH_4)_2SO_4 \longrightarrow \boxed{\text{मसेल}} \begin{matrix} NH_4^{+} \\ NH_4^{+} \end{matrix} + CaSO_4\downarrow$$

NH_4^{+} आयन धीरे–धीरे आक्सीकृत होकर NO_3^{-} बनाते हैं जो अवशिष्ट (RESIDUAL) Ca^{2} से संयुक्त होकर निचले संस्तरों में निक्षालित हो जाते है जिसे मृदा अम्लय हो जाती है।

5. जीवाणुओं (MICRO-ORGANISMS) मृदा में जीवाणुओं द्वारा कार्बनिक पदार्थ का विच्छेदन व नाइट्रीकरण आदि क्रियायें होती है जिनके फलस्वरूप मृदा में कार्बनिक व अकार्बनिक अम्ल उत्पन्न हाते है जो अम्लीय मृदाओं के निर्माण के योग देते है।

6. मृदा में ऑक्सीकरण–अपचयन (OXIDATION-REDUCTION) अवस्था मृदा में उपस्थित कुछ पदार्थो के आयन मृदा में निहित ऑक्सीकारण अपचयन अवस्था के अनुसार अपनी संयोजकता बदलते है। आयन वायुजीवी दशा में उपस्थित होते है जो ऑक्सी कृत अवस्था है, जब कि आवायुजीवी या अपचित अवस्था में उनकी संयोजकत धटकर फेरस और मैंगनस हो जाती है। इससे मृदा पी.एच बढ़ जाता है। ऐसी अपचित अवस्था में प्रायः सल्फाइड के रूप में उपस्थित रहता है। वायुजीवी दषा में आक्सीकृत रूप सल्फेट में परिवर्तित हो जाता है और पौधों को प्राप्त होता है। यह मृदा पी–एच को धटाता ळें

4.5.2.2 अम्लीय मृदाओं का वर्गीकरण (CLASSIFICATION OF ACID SOILS)

1. **प्रबल (STRONGLY) अम्लीय मृदा –** अत्यधिक अम्लीय मृदाओं Al में अधिक मात्रा में विलेय हो जाता है जो मृदा संकीर्ण से H^{+} को विस्थापित करके अधिक षेषित हो जाता है। अधिषोषित Al^{3+} मृदा विलयन के Al^{3+} साथ साम्यावस्था (EQUILIBRIUM) स्थापित कर लेते है, फलस्वरूप मृदा विलयन में उपथित द्वारा मृदा अत्यधिक अम्लीय हो जाती है (पी–एच <4.0)।

मिसेल Al $\longrightarrow$ Al^{3+}

मृदा संकीर्ण मृदा वियलन

मृदा विलयन में Al^{3+} जल अपधटित होकर H^+ देत है जो अत्यधिक अम्लीयता उत्पन्न करते है।

$Al^{3+} + H_2O \longrightarrow Al^{2+}(OH) + H^+$

अधिशोषित H^+ आयनों के प्रभाव से भी मृदा प्रबल अम्लीय बनती है।

2. **मध्यम (MODERATELY) अम्लीय मृदा –** जब मृदा में विलेय आयनों के स्थान पर संयुक्त अवस्था में रहते है, मृदा की अमियता कम हो जाती है।

$Al^{3+} \longrightarrow Al(OH)^{2+}$

$Al(OH)^{2+} \longrightarrow Al(OH)_2$ + ऐलुमिनियम हाइड्रॉक्सी आयन

मृदा संकीर्ण पर अधिषोषित आयन द्वरा विस्थापित होकर मृदर विलयन में पहूँच जाते है और मृदा क्षीण अम्लीय हो जाती है। इन मृदाओं का पी–एच 6.4 तक होता है।

3. **दुर्बल (SLIGHTLY) अम्लीय मृदा –** इन मृदाओं में बम्लीयता संयुक्त एवं विनिमयशील आयन के कारण होती है। इन मृदाओं में प्रायः अनुपस्थित होते है तथा इनका पी–एच 6.7 होता है।

4.5.2.3 मृदा अम्लता का प्रभाव (EFECTS OF SOIL ACIDITY)-

1. मृदा में विलेय एव ंके सांद्रण में वृद्वि, जिसका पौधों पर विषैला प्रभाव पड़ता है।
2. अम्लीय मृदा में P का स्थिरीकरण हो जाती है, जिससे पौधों को P की प्राप्यता घट जाती है।
3. लाभप्रद जीवाणुओं की सक्रियता पर पिरीत प्रभाव पड़ता है।
4. सूक्ष्म पोषक तत्वों Cu, Zn,, Mn, Fe की प्राप्यता में वृद्वि हो जाती है।
5. बंए डहए एवं डव की प्राप्यता कम हो जाती है।
6. पौधों पर प्रभाव – (1.) H^+ आयन का जड़ो पर विषैला प्रभाव
   (2.) पौधों की श्लेष्मा (PHLOEM) का प्रभाव
   (3.) जड़ो द्वारा अवशेषित आयेनों में असंतुलन
   (4.) जड़ो उवं तनों में एन्जाइमों की क्रिया पर दुष्प्रभाव
   (5.) पौधों में अनेक रोग हो जाते है।

4.5.2.4 अम्लीय मृदाओं का सुधार (RECLAMATION)-

अम्लयम मृदाओं का सुधार केवल रासायनिक विधि से होता है। रासायनिक उपचार में विभिन्न प्रकार के चूना (LIMING MATERIALS) प्रयोग में लाये जाते है–

1. ऑक्साइड्स (Cao एवं डहव्द्ध

$CaCO_3$ (चूना पत्थर) $\xrightarrow{\text{गर्म}}$ $CaO + Co_2$

$Ca.Mg(CO_3)_2$ (डोलोमाइट) $\xrightarrow{\text{गर्म}}$ $CaO+MgO+2CO_2$

2. इाइडॉक्साइड्सः $Ca(OH)_2$

$CaCO_3 + H_2O \longrightarrow Ca(OH)_2$ (बुझा हुआ चूना) + CO_2

$CaO + H_2O \longrightarrow Mg(OH)_2$

3. **कार्बोनेट्स ($CaCO_3$ एवं $MgCO_3$) : चूना पत्थर –** यह चट्टानों में कैल्साइट ($CaCO_3$) एवं डोलोमाइटः $Ca.Mg(CO_3)_2$ खनिज के रूप में पाया जाता है। इनाको पीसकर सीधे मृदा में प्रयोग किया जाता है।

सारिणी – चूना पदार्थो के दासीनीकरण (NEUTRALISATIONS) मान ($CaCO_3$ तुल्यांकः EUIVALENT)

चूना पत्थर	उदासीनीकरण मान	चूना पत्थर	उदसीनीकरण मान
$CaCO_3$	100	$Ca(OH)_2$	136
CaO	179	$Ca.Mg(CO_3)_2$	109
		$MgCO_3$	86

अम्लीय मृदा में चूने की रासायनिक अभिक्रियायें (CHEMICAL REACTIONS)-

1. **CO_2 के साथ –** अम्लीय मृदा में जब चूना डाला जाता है तो सर्वप्रथम ब्$_2$ के साथ क्रिया करके बाइकोर्बोनेट में परिवर्तित हो जाता है।

$$CaO + H_2O + 2CO_2 \longrightarrow Ca(HC)_3)_2$$

$$Ca(OH)_2 + 2CO_2 \longrightarrow Ca(HCO_3)_2$$

$$CaCO_3 + H_2O + CO_2 \longrightarrow Ca(HCO_3)_2$$

2. **मृदा कोलॉइड के साथ** चूने में उपस्थित Ca या Mg मृदा कोलॉइड पर अधिषोषित H^+ के साथ विनिमय करके अम्लीय मृदा का सुधार करते है।

चूने की मात्रा का निर्धारण (DETERMAINATION OF LIME REQUIREMENT)-

अम्लीय मृदाओं के सुधार हेतु आवश्यक चूने की मात्रा का निर्धारण मृदा पी–एच एवं कणाकार के आधार पर किया जाता है।

सारिणी–चूने की मात्रा का निर्धारण (कंवर व भूमला, 1959)

मृदा पी–एच	चूने की मात्रा (किगा हे$^{-1}$)		
	बलुई दोमट	दोमट	मृत्तिका दोमट
5.0	1125	1687	2625
5.2	975	1462	2275
5.4	825	1237	1925
5.6	675	1012	1575
5.8	525	787	1225
6.0	375	562	875
6.2	225	337	525
6.4	75	112	175

चूने का मृदा पर प्रभाव (EFFECT OF LIME ON SOIL)-

(1) भौतिक प्रभाव (PHYSICAL EFFECTS)-

1. मृदा संरचना में सुधार
2. मृदा के स्थूल घनत्व में कमी
3. अन्तःस्यन्दन (INFILTRATION) व अन्तःस्रवण (PERCOLATION) में वृद्वि
4. मृदा अपरदन के नियन्त्रण में अप्रत्यक्ष योग

(2) रासायनिक प्रभाव (CHEMICAL EFFECTS)-

1. मृदा पी–एच में वृद्वि
2. H^+ आयन की सान्द्रता में कमी एवं OH की सान्द्रता में वृद्वि

3. Fe, Al एवं Mn की विलेयता व प्राप्यता में कमी
4. P एवं Mn की प्राप्यता में वृद्वि
5. विनिययशील Ca^2 एवं Mg^{2+} की मात्रा में वृद्वि
6. भस्म संतृप्त (BASE STURATION) प्रतिशतता अधिक
7. K प्राप्यता प्रभावित
8. भारी धातु तत्वों Zn, Pb, Cd, Ni के विषैले प्रभाव में कमी

(3) जैविक प्रभाव ;ठप्व्स्व्ळप्ब्।स् म्थ्थ्म्ब्ज्ैद्ध.

1. वायुजीवी बैक्टीरिया की संक्रियता में वद्वि
2. कार्बनिक पदार्थ का तीव्र विच्छेदन
3. N स्थिरीकरण, खनिजन तथा S ऑक्सीकरण में वृद्वि
4. आलू में 'पोटैटो–स्कैब' विमारी का अधिक प्रकोप

अधिक चूना उपयोग के प्रभाव (EFFECT OF OVERIMING)-

1. पौधों के लिये Fe, Mn, Cu एवं Zn की प्राप्यता में अवरोध
2. P की प्राप्यता व उपापचय (METABOLISM) प्रभावित
3. पौधों द्वारा B के अवशोषण (ABSORPTION) व उपयोग में बाधा
4. पी–एच में अत्यधि परिवर्तन के फलस्वरूप मृदा गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव
5. जीवाणुओं की सक्रियता पर प्रतिकूल प्रभाव।

4.5.2.5 मिट्टी के पी0 एच0 के आधार पर फसलों का चुनाव सारणी–3 की सहायता से कर सकते हैं।

सारणी–3ः मृदा पी.एच. के आधार पर फसलों का चुनाव

फसल	**पी0 एच0 विस्तार**	**फसल**	**पी.एच. विस्तार**	**फसल**	**पी.एच. विस्तार**
अनाज		**दलहन/लेग्यूमस**		**अन्य फसल**	
मक्का	5.0-6.5	फ्रेंचवीन	5.5-7.0	गन्ना	6.0-7.5
ज्वार	4.0-6.0	वरसीम	6.0-7.5	कपास	5.0-5.5
धान	4.0-6.5	मूंगपफली	5.0-6.5	आलू	5.0-5.5
गेहूँ	6.0-7.5	सोयाबीन	5.5-7.0	शकरकन्द	6.5-8.0
जौ	6.0-7.5	मटर	5.5-7.0	तम्बाकू	5.5-7.5
राई	5.0-7.0	सूर्यमूखी	6.0-7.5	चाय	4.0-6.0

4.5.3 जलाक्रांत (जलमग्न) मृदा (WATERLOGGED SOIL)

परिभाषा :– मृदा जिसका विकास एवं गुण मृदा के ऊपरी भाग के अस्थायी या स्थायी संतृप्तता द्वारा अत्यधिक प्रभावित होता है, जलाक्रांत या जलमग्न मृदा कहलाती है। मृदा के ऊपरी संस्तरों का जलमग्न होना अस्थायी भौतिक एवं रासायनिक परिवर्तनों के लिये अपचायी (REDUCING) दषायें उत्पन्न करती है।

4.5.3.1 जलाक्रांत के प्रकार (KINDS)

1. **समुद्री बाढ़ जलाक्रांत (OCEANIC FLOOD WATER-LOGGING) –** समुद्री जल पास की मृदाओं में फैलकर जलाक्रांत पैदा करता है।
2. **नदीय बाढ़ जलाक्रांत (REVERINE FLOOD WATER-LOGGING) -** वर्षा ऋतु में नदियों द्वारा जल उनके आस–पास फैलकर जलाक्रांत पैदा करता है।
3. **अव–मृदा जलाक्रांत (SEASONAL WATER-LOGGING) -** वर्षा ऋतु में भौम–जल स्तर का अधिक होना पौधों की जड़ो की वृद्वि के लिसे अनुपयुक्त होता है।
4. **मौसमी जलाक्रांत (SEASONAL WATER-LOGGING)** वर्षा ऋतु में बहता हुआ जल निचले भागों एवं गड्ढ़ो में एकत्रित होकर जलाक्रांत पैदा करता है।
5. **चिरस्थायी जलाक्रांत (PERENNIAL WATER-LOGING)** गहरा जल, दलदल इत्यादि में वर्षा जल, बहता हुआ जल, नहरों से निस्यंदन (SEEPAGE) जल प्राप्त करके जलाक्रांत पैदा करते है।

4.5.3.2 आर्द्र–भूमि मृदाओं का वर्गीकरण (CLASSIFICATION OF WETLAND SOILLS)-

1. आर्द्र अवस्था की गहराई के अनुसार निम्न वर्ग होते हैं।

वर्ग 1 – 400 से मी से नीचे आर्द्र नही होता है।

वर्ग 2 – 100 से मी से नीचे आर्द्र नही होता है।

वर्ग 3– 50 से मी से नीचे आर्द्र नही होता है।

वर्ग 4– 25 से मी से नीचे आर्द्र नही होता है।

2. आर्द्र अवस्था की अवधि (DURATION) के अनुसार निम्न वर्ग होते है।

वर्ग अ – अवधि के 1/12 वे भाग से कम समय तक आर्द्र

वर्ग ब – अवधि के 1/12 से 1/4 भाग समय तक आर्द्र

वर्ग स – अवधि के 1/4 से 1/2 भाग समय तक आर्द्र

वर्ग द – अवधि के 1/2 भाग से अधिक समय तक आर्द्र

अधिकांष आर्द्र मृदायें वर्ग 4 के अंतर्गत आती है लेकिन कुछ दषाओं में वर्ग 2 एवं वर्ग 1 (गहरे जल) के अंतर्गत आती है जिनमे प्लवमान धान की खेती होती है।

4.5.3.3 जलाक्रांत मृदा निर्माण को प्रभावित करने वाले कारक

1. बाढ़ (FLOOD) – बाढ़ का जल खेत में प्रायः जलाक्रांत स्थिति पैदा करता है।
2. जलवायु (CLIMATE) – अत्यधिक वर्षा के कारण मृदा सहत पर जल एकत्रित हो जाता है।
3. नहरों से निस्यंदन (seepage from canal) – नहरों द्वारा जल के निसयंदन से भौम–जल सतह के नजदीक हो जाता है।
4. जल निकास (DRAINAGE) – खराब जल निकस के कारण खेत में जलाक्रांत हो जाता है।
5. मृदा आकृति (LAND SHAPE) – प्याला–प्लेट (SAUCER) आकार की जमीन में जल ऊँचे भागों से निचले भागों में एकत्रित होकर जलाक्रांत पैदा करता है।

6. अनियंत्रित एवं अनावष्यक सिंचाई (CONSTRAINTS ASSOCIATED WITH EXCESS WATER)– अत्यधिक सिंचाई से मृदा सतह पर जल एकत्रित हो जाता है।

4.5.3.4 अत्यधिक जल से हानियॉ

जलाक्रांत से फसलों का निमग्न (SUBMERGENCE) होना निचली आर्द्र मृदाओ में एक गम्भीर समस्या है। जलाक्रांत के निम्न प्रभाव है।

1. जल गहराई– निचले भाग प्रायः लगभग 50 सेमी गहराई तक जलप्लावित होते है और फसलोत्पादन की सीमा अत्यधिक कम अपचय विभव एवं कम P प्राप्यता से सम्बन्धित होती है।

गहरे जल (50–100 से मी गहराइ जलाक्रांत) प्याले भागों में धान की पैदावार में सबसे बड़ी समस्या निमग्न दषा का 10 दिन से अधिक का होना होता है।

2. मृदा संरचना– लगातार मृदा में जल के स्थिर रहने के कारण मृदा संरचना नष्ट हो जाती है और मृदा संहत हो जाती है।

3. खराब वातन – जलाक्रांत के कारण मृदा से वायु वायुमंडल में चली जाती है। अपर्याप्त ऑक्सीजन के कारण पादप वृद्वि कम होती है या रूक जाती है। खराब वातन से मृदा में अविषालु पदार्थ उत्पन्न होते है। केवल धान के पौधें जलाक्रांत मृदा में जीवित रह सकते है।

4. मृदा पी एच – जल प्लावित मृदाओं के पी एच में वियुत्क्रम परिवर्तन होता है।, अम्लीय मृदाओं में पी एच बढ़ता है और क्षारीय मृदाओं में पी एच घटता है। निःसंदेह पी एच उदासीनता की ओर जाता है।

5. मृदा तापक्रम – जलाक्रांत से मृदा तापक्रम घटता है। आर्द्र मृदा की विषिष्ट उष्मा षुष्क मृदा की अपेक्षा अधिक होती है, परिणाम स्वरूप आर्द्र मृदा कम तापक्रम षुष्क मृदा की अपेक्षा कम होता है। कम तापक्रम सूक्ष्म जीवाणुओं की सक्रियता कम कर देता है जिससे नाइट्रोजन स्थिरीकरण गति कम हो जाती है।

6. **तव्वों की प्राप्यता**

नाइट्रोजन – जलमग्न मृदाओं में N की कमी बहुतायत से होती है। कम तापक्रम एवं अपचयी दषा के कारण कार्बनिक N की खनिजन प्रभावित होता है।

फॉस्फोरस – जलमग्न मृदाओं में अकार्बनिक P ऊँची भूमि की अपेक्षा अधिक मात्रा में उपस्थित होता है।

पोटैषियम – निचले भागों की तैयारी में ओधन और अलोडन से मृदा धोल में K की सान्द्रता बढ़ जाती है क्योंकि मृदा धोल में पर्याप्त मात्रा में उपस्थित Fe^{2+} और Mn^{2} आयन्स द्वारा मृत्तिका सतह पर उपस्थित K^{+} आयन्स का विनिमय हो जाता है।

सल्फर – जलमग्न मृदाओं में S की कमी पायी जाती है। जलमग्न मृदाओं में SO_4^{-2} का अपचयन धान की फसल के लिए 3 दषायें उत्पन्न करता है। S की मात्रा कम हो जाती है Cu और Zn अचल हो जाते है और Fe की कमी होने पर H_2S की आविषलुता उत्पन्न होने लगती है।

आयरन और मैगनीज – Fe^{2} और Mn^{2} अधिक मात्रा में प्राप्य होने के कारण पौधों के लिये आविषालु हो जाते है।

7. **लवणीयता** – समुद्र के किनारे निचले भागों में एवं कम जल निकस वाली निचली मृदाओं में धान के उत्पादन में लवणीयता एक महत्वपूर्ण आपदा है।

8. **फसलों पर प्रभाव** – जलाक्रांत की दषा में खराब वातन एवं पौधों को तत्वों की अप्राप्यता के कारण सभी फसल जीवित नहीं रह सकती हैं केवल धान एक अपबाद है।

4.5.3.5 जलाक्रांत मृदा का प्रबन्धन (MANAGEMENT OF WATER-LOGGED SOIL)

1. **जमीन का समजलीकरण** – समजलीकरण से आर्द्र मृदाओं का जल बहकर बाहर हो जाता है।

2. **जल निकास** – जल निकास द्वारा पादप जड़ भाग से अधिक जल बाहर चला जाता है। जिससे पौधों की वृद्वि अच्छी होती है।

3. **नियंत्रित सिंचाई** – नियंत्रित सिंचाई से मृदा को जलमग्न होने से कुछ सीमा तक बचाया जा सकता है।

4. **नहरों एवं सिंचाई की नालियों से निस्यंदन रोकना –** निस्यंदन द्वारा मृदा जलाक्रांत हो जाती है।

5. **बाढ़ नियंत्रण उपाय –** बांध बनाकर नदियों के पानी को कृषि योग्य भूमि में आने से रोका जा सकता है।

6. **अधिक वाष्पोत्सर्जन वाले पौधों का वृक्षारोपण –** कुछ पौधों जैसे बबूल, यूकेलिप्टस आदि में वाष्पोत्सर्जन गति बहुत अधिक होती है। वाष्पोत्सर्जन द्वारा पौधे भौम जल का उपयोग करते है जिसे मृदा जल स्तर नीचे चला जाता है।

7. **बाँधों और मेड़ो (BUNDS AND RIDGES) पर बुआई –** जलमग्न क्षेत्रों में बाँधों और मेड़ो पर बुआई करनी चाहिए। इससे पौध जड़ो के पास वातन अच्छा रहता है।

8. **जलाक्रांत मृदाओं में तत्वों का प्रबंधन –** जलाक्रांत मृदाओं में N की कमी होती है तथा NH_4^+ आयन की प्रधानता होती है। निम्न विधियों द्वारा पौधों के लिये N की उपयोगिता बढ़ायी जा सकती है।

1. **उर्वरकों का गहराई में प्रयोग (DEEP PLACEMENT) -** N उर्वरकों को सतह के नीचे गहराई में प्रयोग करने से उनकी पौधों के लिए उपयोगिता बढ़ जाती है।

2. **मंद एवं नियंत्रित मोचन उर्वरक (SLOW AND CONTROLLED RELEASE FERTILIZERS) –** मंद माचन उर्वरक सल्फर विलेपित युरिया NH_3 वाष्पीकरण ह्रास कम करता है और पूरे वर्धन काल तक फसल को पर्याप्त N मिलता रहता है।

3. नाइट्रीकरण और यूरिएज निरोधकों का प्रयोग – नाइट्रीकरण निरोधक नाइट्रोसोमोनास बैक्टीरिया की वृद्वि एवं क्रियाषीलता को रोकर $NH4^+$-N को NO_3^- N में परिवर्तित होने से रोकते है। नीम का एंसीटोन निष्कर्ष एक प्रभावी और देषी नाइट्रीकरण निरोधक है।

यूरिया के साथ यूरिएक निरोधक फिनाइलफॉडाइऐमिडेट के प्रयोग से जलाक्रांत क्षेत्र में जलीय NH_3 देर से पैदा होता है जिससे पौधों द्वारा N- अन्तर्ग्रहण बढ़ जाता है।

4.5.3.6 जलमग्नता को सहन करने वाली फसलें एवं उनकी सही जातियों का चयन

कुछ फसलों जैसे धान, जूट, ढँचा, आरनट आदि कुछ सीमा तक जलाक्रांति सहन कर सकती है। धान की फसल में जलमग्नता को सहने की षक्ति विभिन्न जातियों में विभिन्न होती है। ऊँची जगहों में उगायी जाने वाली धान की जातियाँ जलाक्रांत को सहन नही कर सकती है।

सारिणी –जलमग्नता सहन करने वाली फसलों और उनकी

जातियाँ (SUBMERGENCE TOLERANT CROPS AND THEIR VARIETIES)

जलाक्रांति की स्थिति	फसल	जातियाँ
1. गहरा जल	धान	जानकी, सुधा, बी आर 14, मधुकर, जलमग्न, जलधि,
2. बाढ़ (कम समय के लिये जलमग्न)	धान	जानकी, बी आर 13
		राधा, राजश्री, पंकज, वैदेही
3. उथला जल		जयश्री, कनक, मसूरी, सीता, सुजाता
4. जल स्तर मृदा सतह के पास और कभी कभी जलाक्रांति		बी ओ 3, बी ओ 29
	धान	जे आर ओ 632, जे आर सी 212
	धान	
	गन्ना	
	जूट	

4.5.4 : दीयारा क्षेत्र

बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में नदियॉ खासकर गंगा नदी हर बर्ष पानी बहाव के बाद कुछ क्षेत्रों में खास प्रभाव छोड़ जाती हैं जिसे दियारा क्षेत्र कहते हैं। दियारा का अर्थ होता है आइसलैंड लेकिन कुछ संकीर्ण (strip) क्षेत्र जो मुख्य क्षेत्र से जुड़ा होता है उसे भी दियारा क्षेत्र कहते हैं। कही कही इसे मंघा या चौर भी कहते हैं।

दियारा क्षेत्र नीची जमीन है जिसमे नदियों द्वारा बर्ष भर में एक या अधिक बार पानी से डुबो देती है। दियारा क्षेत्रों में बालू के उपर क्ले एवं सिल्ट की पतली स्तर जमा हो जाती है। इस स्तर की मोटाई बाढ के पानी के ठहराव की समयसीमा एवं बारंबारता (Extent and frequency) पर निर्भर करता है। यह क्षेत्र कभी कभी बहुत उपजाउ होता है जिसमें अच्छी फसल होती है। इन क्षेत्रों की उपरी सतह का क्ले , सिल्ट एवं जैविक पदार्थ हर बर्ष बाढ के पानी में बह जाता है एवं बाढ के पानी द्वारा बहाकर लायी गयी क्ले , सिल्ट एवं जैविक पदार्थों का पानी निकलते निकलते नयी परत जमा हो जाता है। गंगा नदी के उतरी भागों में यह क्षेत्र काफी चौड़ाई में पायी जाती है।

दियारा क्षेत्र से जब पानी निकल जाता है एवं सतह दिखने लगता है तो आस पास के लोग अपना अस्थायी घर बनाकर खेती षुरू कर देते हैं। आमतौर पर यह क्षेत्र खेती के लिये दिसम्बर से जून महीना जबतक उपलब्ध होता है जबतक कि मॉनसून बर्षा से पानी भर नही जाते। पानी से डूबने के बाद इसमे खेती नही होती है। नदी की धारा बदलने पर दियारा क्षेत्र भी बदल जाता है। जाड़े के मौसम में इन क्षेत्रों में कई तरह के फसल उपजाये जाते हैं। इन क्षेत्रों में मक्का एवं लता वाली फसलों की खेती बहुत हीं उपयुक्त होता है। समय की बचत के लिये पानी निकलते हीं बिना जुताई के बीज की बोबाई करना ज्यादा प्रचलित है। इन क्षेत्रों में खेती बहुत हीं बिवेक से करनी चाहिये ताकि बाढ के दिनों में फसलों की कम से कम क्षती हो। कुछ दियारा क्षेत्रों में सिल्ट की अधिकता के कारण फसल उपजाना सम्भव नहीं हो पाता है।

4.5.5 ताल क्षेत्र (Tal Land)

टाल क्षेत्र की मृदा संबंधी समस्याएँ एवं प्रबंधन

टाल मुख्यतः वैसी भूमि को कहा जाता है जिसका आकार कटोरानुमा हो। बर्षा के दिनों में नदियों का पानी इन क्षेत्रों में जमा होता है परन्तु अपने विषेष आकार के कारण पानी का निकलना संभव नही हो पाता। इस तरह टाल क्षेत्रो में पानी का जमाव दो से चार महीनों अर्थात जुलाई से अक्टूबर माह तक रहता है। जल जमाव के कारण टाल क्षेत्रों में किसान केवल एक ही (रबी) फसल ले पाते है। बिहार में टाल क्षेत्र गंगा नदी के दक्षिणी किनारे पर पष्चिम में बक्सर से लेकर पूर्व में पाकुर तक लगभग एक लाख हेक्टेयर क्षेत्र में फैला है।

इनकी मिट्टियॉ पूरी गहराई तक भारी (clay) होती है जिसका रंग धुसल से गहरा धुसर (ग्रे से डार्क ग्रें) होता है। मृदा का टेक्सचर मध्यम भारी से भारी होता है सूखने पर मिट्टी बहुत कड़ी हो जाती है एवं इसमें चौड़ी दरारें (Crackings) उत्पन्न हो जाती है। बारिस के दिनों में उपरी सतह की मिट्टी धुलकर दरारों में नीचे चली जाती है तथा इनमे फैलने के गुण के कारण मिट्टी के कणों का उपर नीचे चक्रीय मिश्रण होता रहता है एवं चिकनी लसलसा हो जाती है। बुआई हेतु जुताई करने पर मिट्टी के बड़े ढेले बनते है जिससे बीज का मिट्टी से सही संपर्क नही हो पाता है तथा बीज के अंकुरण पर प्रतिकूल असर पड़ता है। इन मृदाओं का संपूर्ण धनत्व (बल्क डेन्सीटी) ज्यादा होता है जबकि जल रिसाव बहुत ही कम होता है। फलस्वरूप फसलों की अच्छी बढ़वार नही हो पाती है।

विभिन्न प्रकार के कार्बनिक अवषेषों, जुताई के तरीकों एवं अन्य तकनीक के द्वारा टाल क्षेत्र की मिट्टियों में मिलाने से उत्पादकता में फायदा होता है। धान की भूसी (100 क्विंटल/हे0) तथा गहरी जुताई (4.5 से0मी) के फलस्वरूप गेहूँ की उत्पादकता सामान्य की अपेक्षा 2.4 किव्टल /हे0 अधिक पाई गई है। संपूर्ण धनत्व (बल्क डेन्सीटी) में कमी तथा गेहूँ की जड़ो का अत्यधिक गहराई तक फैलाव पाया गया। जुताई के तुरंत बाद गेहूँ की बुआई सर्वोत्तम पाया गया है। विषम परिस्थितियों में गेहूँ की बुआई जुताई के एक दिन के अन्दर हो जाना चाहिए अन्यथा मिट्टी में नमी का तेजी से ह्रास होता है और मिट्टी के ढ़ेले बहुत ही कड़े हो जाते है। फलस्वरूप बीज और मिट्टी का उचित संपर्क नही बन पाता है अंततः फसल की उत्पादकता में भारी कमी आती है। बुआई के तुरंत बाद पाटा की सहायता से मिट्टी को दबा देना चाहिए जिससे उपज में गिरावट की संभावना कम होती है।

बिहार में विभिन्न टाल क्षेत्रों से मिट्टी के नमूनों का विष्लेषण किया गया जिससे इनके विभिन्न गुणों की जानकारी मिलती है। टाल क्षेत्रों की मृदा की प्रतिक्रिया (पी0 एच0) उदासीन से क्षारीय (मोडरेटली अलकलाईन) होती है तथा इसका मान 6.9–7.6 पाया गया है। मृदा की विधुत चालकता 0.10–0.62 डेसी साइमन प्रति मीटर **(डे सा/मी)** पाया गया है। अतः मृदा में लवण की मात्रा नगण्य होता है। मृदा की जैविक कार्बन की मात्रा निम्न से मध्यम (0.10–0. 65) तक पाया गया है। इसी प्रकार इन मृदाओं में उपलब्ध स्फूर एवं पोटास की मात्रा मध्यम से ज्यादा होती है। टाल क्षेत्रों की मिट्यों का वर्गीकरण ग्रेट गुप पेलूस्टर्ट के रूप में किया जाता है।

मृदा में पाये जाने वाले सूक्ष्म पोषक तत्वों (जस्ता, तॉबा, लोहा, मैगनीज) एवं गंधक का स्तर नीचे तालिका में दर्षाया गया है इन श्रोतो से प्राप्त 2589 मिट्टी के नमूनों के विष्लेषण से पाया गया है कि इन मिट्टियों में जस्ता की मात्रा 0.08 – 7.96 पी0 पी0 एम0 है। भागलपुर, मुंगेर एवं बेगुसराय जिला के मिट्टी की प्रतिक्रिया का मान बढ़ने से जस्ते की कमी क्रमषः बढ़ती चली जाती है। मिट्टी की प्रतिक्रिया का मान 7.5 से कम रहने पर केवल 11 प्रतिषत नमूनो में जस्ता की कमी पाई गई है। इसी प्रकार पी0 एच0 7.5 से 8.0 तक 40 प्रतिषत मिट्टियों के नमूनो और पी0 एच0 8 से ज्यादा होने पर 59 प्रतिषत नमूनों में जस्ते की कमी पायी गयी है। जैविक कार्बन की मात्रा बढ़ने के साथ जस्ता की उपलब्धता में वृद्वि पायी गई। उपलब्ध तांबा की मात्रा 0.10 – 8.07 तथा औसत मान 2.3 पाया गया है। तांबा का क्रिटकल मान (0.66 पीपीएम) के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि टाल क्षेत्र की मिट्टियों में उपलब्ध तॉबे का अभाव नही है।

उपलब्ध लोहे की मात्रा इन मिट्टियों में 0.60 – 270.0 तथा औसत मान 23.60 पीपीएम पाया गया। उपलब्ध लोहे की क्रिटिकल मान 7.0 पीपीएम है। इसके आधार पर भागलपुर में 2 प्रतिषत मिट्टियों के नमूनों में उपलब्ध लोहे की कमी पायी गई जबकि मुंगेर जिले में उपलब्ध लोहे की मात्रा भरपहर पाया गया है।

टाल क्षेत्र की मिट्टियों में उपलब्ध मैंगनीज 0.72–200 पीपीएम तक पाया गया जिसका औसत मान 31.50 पीपीएम था। मैग्नीज के क्रिटिकल मान (3 पीपीएम) के आधार पर उपरोक्त मिट्टियों के नमूनों में काफी मात्रा में उपलब्ध मैंगनीज की मात्रा का पता चलता है।

भागलपूर से प्राप्त मिट्टी के नमूनों में उपलब्ध बोरोन का क्रिटकल मान 0.53 पीपीएम है अतः मिट्टी के नमूनों में बोरोन की कमी पाई गई। मिट्टी की पी एच मान बढ़ने से बोरोन की कमी अधिक पाई गई। साथ ही यह भी देखा गया है कि जैविक कार्बन की मात्रा बढ़ने से बोरोन की उपलब्धता बढ़ती है। नमूनों में उपलब्ध गंधक 6.7–120.8 पीपीएम तथा औसतमान 21.7 पीपीएम पाया गया है। गंधक का क्रिटकल मान 10 पीपीएम के आधार पर 15 प्रतिषत मिट्टी के नमूनों में गंधक की कमी पाई गई है।

इस प्रकार हम देखते है कि टाल क्षेत्र की मिट्टियों में उपलब्ध जस्ता, लोहा, बोरोन एवं गंधक की कमी दृष्टिगोचर हो रही है अतः इन क्षेत्रों में मिट्टी की जॉच के आधार पर उपरोक्त तत्वों को अनुषंषित मात्रा में व्यवहार किया जाना चहिए।

तालिका – 1 टाल क्षपेत्र की मिट्टीयों के रासायनिक गुण

क्रमांक	स्थान	पी0 एच0	विधुत चालकता (डे सा/मी)	जैविक कार्बन (%)	क्ले (%)
1.	आरा	7.0-7.5	0.16-0.51	0.10-0.32	25.5-32.8
2.	पटना	7.0-7.4	0.13-0.27	0.10-0.40	24.3-33.1
3.	फतुहा	7.0-7-5	0.13-0.55	0.10-0.45	28.5-35.8
4.	बख्तयापुर	7.0-7.5	0.10-0.20	0.15-0.42	29.7-39.2
5.	बाढ़	6-9-7.5	0.13-0.62	0.15-0.55	29.7-40.1
6.	मोकामा	6.9-7.5	0.13-0.27	0.15-0.45	30.1-42.7
7.	बड़हिया	7.0-7.5	0.13-0.34	0.18-0.65	35.1-44.3
8.	मुँगेर	6.8-7.5	0.13-0.41	0.10-0.45	28.5-40.6
9.	भागलपुर	7.0-7.5	0.13-0.20	0.10-0.50	31.0-42.5
10.	कहलगॉव	7.9-7.6	0.13-0.27	0.18-0.60	28.2-40.2

तालिका – 2 टाल क्षेत्र की मिट्टियों में उपलब्ध सूक्ष्म पोषक तत्वों एवं गंधक की मात्रा

क्रमांक	जिला	जस्ता पीपीएम	तॉबा	लोहा	मैग्नीज	बोरोन	गंधक
1.	भागलपुर	0.10-8.9 (1.10)	0.15-7.1 (2.4)	1.0-270.0 (24.3)	2.2-200.0 (338)	0.04-5.7 (1.04)	6.7-120.8 (21.7)
2.	मुँगेर	0.38-696 (1.10)	0.23-4.2 (2.3)	0.60-82.2 (18.7)	5.4-82.2 (28.3)	-	-
3.	बेगुसराय	0.08-8.0	0.10-6.8 (2.2)	0.80-66.6 (25.2)	0.7-168.0 (29.4)	-	-

कृषि बर्षा